Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

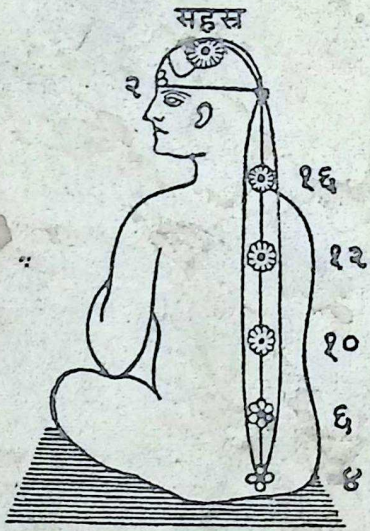
॥ ॐ ॥

जीवन-लक्ष्य और साधना

'ग्रन्थ' तेरा विश्व में यशवान हो

आशीर्वाद

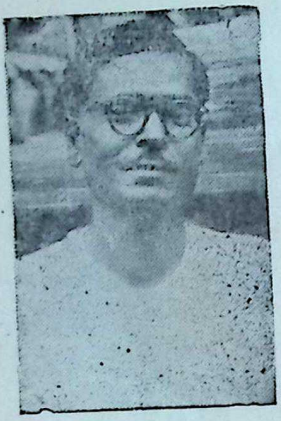
—श्री गोपीनाथ कविराज



लेखक—रामावतार प्रसाद 'विशारद'

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund



लेखक—रामावतार प्रसाद
'विशारद'

जन्म काल सन् १९१२, एवं जन्म ग्रहण उत्तर विहारन्तर्गत मोतिहारी नगर। सन् १९३२ में गुरु दर्शन और दीक्षा लाभ

—**—

मन माया का अंश है इसे छोड़ देने पर जीव को मोहित कर अपनी मोहिनी माया में फंसा देता है। जिसका शोधन करना आवश्यक है। इस जीवन लक्ष्य और साधना ग्रन्थ में लिखित उपाय से सभी बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को वशीभूत रखकर सांसारिक दुःखों से मुक्त होकर चिर शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

CC-0. Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

जीवन-लक्ष्य और साधना

लेखक
रामावतार प्रसाद, 'विशारद'

श्री [illegible] अग्रवाल आँवलकोटा,
[illegible]
[illegible] नेपाल)

प्रकाशक
रामावतार प्रसाद 'विशारद'
डी० ३८/४ हौज कटोरा
वाराणसी

[illegible] परिषद
[illegible] ४/-

मूल्य—३) रुपया

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund

प्रकाशक
रामावतार प्रसाद 'विशारद'
डी० ३८/४ हौज कटोरा
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण, १०००
जनवरी—१९६८

मुद्रक
अमलकुमार वसु
इंडियन प्रेस, (प्रा०) लिमिटेड,
वाराणसी

Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

श्री कमलापति त्रिपाठी, अध्यक्ष उत्तर प्रदेश कांग्रेस की सम्मति

जीवन-लक्ष्य और साधना नामक पुस्तक की रचना करके रामावतार प्रसाद 'विशारद' ने एक ऐसे पवित्र, किन्तु गूढ़ और गोप्य विषय को संक्षिप्त और सरल रूप से स्पष्ट किया है जिसकी ओर वैदिक युग से लेकर आज तक भारत की आत्मा आकृष्ट होती रही है। मैं इस पुस्तक के सम्बन्ध में सम्मति देने का अधिकार नहीं रखता क्योंकि जिस विषय की चर्चा उसमें की गयी है उसका रंचमात्र भी ज्ञान मुझे नहीं है। पर अनाधिकारी होते हुए भी अपनी श्रद्धांजलि लेकर किसी के सन्मुख उपस्थित होने का अधिकार तो मुझे है ही। जगत क्या है, सृष्टि क्यों और कैसे हुई, उसका मूल क्या है, जीवन और जगत का क्या प्रयोजन है आदि प्रश्न शाश्वत है जिन पर सभी युग, देश, काल में मानव-समाज का प्रबुद्ध और विचारक वर्ग सोचता, विचारता और मनन करता रहा है। तात्विक दृष्टि से जहाँ इन प्रश्नों का उत्तर खोज निकालने के लिये विवेचनायें होती रही हैं वहीं सत्य का साक्षात्कार करने के लिये विविध प्रकार की साधन पद्धतियों का प्रादुर्भाव होता रहा है जिन्हें गुह्य करके आकुल हृदय से सत्य का साधक प्रयोग के पथ में अग्रसर होता हुआ उन अनुभूतियों को प्राप्त करता रहा है जो मूल-तत्त्व के दर्शन के फलस्वरूप उसे उपलब्ध होती रही है।

भारत की संस्कृति की रचना संभवतः उस दार्शनिक दृष्टि की भित्ति पर हुई है जिसने समस्त व्यक्त और अव्यक्त विश्व प्रपंच में 'एकत्वं अनुपश्यत' के अनुसार एक ही मूल सत्ता का दर्शन किया है। सृष्टि शुद्ध जड़ है, जिसका आविर्भाव आकस्मिक है, और जिसके विकास के पीछे कोई प्रयोजन नहीं है और जो केवल अंध-अचेतन, भौतिक तत्वों की निरुद्देश्य-रसायनिक प्रक्रिया का परिणाम मात्र है। आदि सिद्धान्त भारत की आत्मा को कभी मान्य नहीं हुए। उसने तो यही देखा कि समस्त सृष्टि किसी उस अनन्य, अद्वितीय, चिन्मय शिवमय, आनन्दमय

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

और अक्षर, अविनश्वर सन्मय सत्ता का अंशमात्र अभिव्यंजना है जो स्वयं पूर्ण है, जो पूर्ण का सम्पूर्ण प्रजनन करके भी चिरंतन रूप से पूर्ण ही रहता है।

बस इस सत्य की अनुभूति से ही उन प्रश्नों का उत्तर मिलता है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। साधना के पथ पर अग्रसर हुए बिना शास्त्र चर्चा-मात्र से उस सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता। वह बुद्धि, मन, और इन्द्रियों तथा विचारों में पकड़ा नहीं जा सकता। कालातीत और अगोचर अनुभूतियों से ही उसका आस्वादन होता है। प्रस्तुत पुस्तक उस लक्ष्य और साधना के पथ की ओर संकेत करती है। न कुछ जानते हुए भी मेरी असीम श्रद्धा उस विषय के प्रति है अतः ये पंक्तियाँ सादर समर्पित हैं।

कमलापति त्रिपाठी

श्री पं० जगन्नाथ उपाध्याय
पालिविभागाध्यक्ष, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी की सम्मति

श्री रामावतार प्रसाद जी ने अपने जीवन में अनेक विशिष्ट साधकों का सत्संग किया है। यह स्वयं भी साधक हैं। इनकी इस लघु पुस्तिका में अजपा, नाद-साधन के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण चक्र यन्त्र का भी समावेश है। प्रात-र्वन्दनीय श्री श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी की परम्परा इस क्षेत्र में महत्त्व रखती है, इस पुस्तक में उसका भी किञ्चित दिग्दर्शन है।

साधक व्यक्ति के भेद से योग की अनन्त शाखायें हैं, यथासंभव उनका संग्रह होना चाहिये। उसी दिशा में यह प्रयास है।

जगन्नाथ उपाध्याय
पालिविभागाध्यक्ष
वाराणसेय-संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी (Rector) की सम्मति—

मुझे श्री रामावतार प्रसाद 'विशारद' जी की पुस्तक 'जीवन-लक्ष्य और साधना' पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस पुस्तक में योग साधना का रोचक वर्णन है। लेखक का योग शास्त्र विषयक ज्ञान शास्त्र सम्मत है और अनुभूत भी है। कुण्डलिनी साधना, अजपा जाप साधना, नाद साधना, मुद्रा साधना आदि योग शास्त्रीय विषयों पर इन्होंने बहुत स्पष्ट भाषा में अपने विचार प्रकट किए हैं। मुझे विश्वास है कि जो लोग इस विषय में जिज्ञासु हैं उनके लिये उपादेय सिद्ध होगी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति
श्री डॉ० गौरीनाथ शास्त्री की सम्मति

मुझे रामावतार प्रसाद 'विशारद' का 'जीवन-लक्ष्य और साधना' ग्रन्थ के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। लेखक ने जो प्रयास किया है वह ऐसे विषय में है जो गोप्य होते हुए भी भारतीय संस्कृति के मूल में विशिष्ट रूप से स्थापित है। वर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि मनुष्य के भौतिकवाद का अतिक्रमण करके तत्त्व के आलोचना का समय थोड़ा ही मिलता है क्योंकि मानव का चित्त सर्वदा विषयतृष्णा के तरंगों से आलोड़ित हो रहा है। इन तरंगों को रोकने का कौशल है योगाभ्यास। इसी कारण योगाभ्यास विना आत्मदर्शन संभव नहीं है। अतएव वर्तमान ग्रन्थ में प्रतिपादित आलोचना मानव मात्र के लिये विशेषोपयोगी एवं अनुकूल है। जैसा कि आचार्यों तथा महात्माओं द्वारा समय-समय पर तथाविध उपदिष्ट है। इस ग्रन्थ में बताये हुए साधना के द्वारा अभीष्ट साधन मार्ग का रहस्य अच्छी प्रकार से जाना जायगा इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार विचार-विमर्श के अनन्तर मानव मात्र की दृष्टि आध्यात्मिक तत्त्वों पर प्रतिष्ठित होगी तथा उनका जीवन सुखमय एवं सौन्दर्यमय होगा।

गौरीनाथ शास्त्री
उप-कुलपति

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

पद्मविभूषण महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ जी कविराज एम० ए०, डी० लिट् की सम्मति--

जीवन-लक्ष्य और साधना

लेखक श्री रामावतार प्रसाद 'विशारद' का। यह लघुग्रन्थ योग तत्त्व विषय में परम्परा प्राप्त कुछ सारगर्भ तत्वोपदेश के आधार पर रचा गया है। इस परम्परा के मूल में हैं स्वर्गीय योगिप्रवर श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महोदय और मध्य में हैं उनके शिष्य श्रद्धेय श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल एवं हरिनारायण पालधि महोदय, जिनके साथ ग्रन्थकार का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। योग साधन विषय में उद्यमशील ग्रन्थकार का अपना अनुभव भी है। अतः जिज्ञासु साधक के लिये इस लघुकाय ग्रन्थ की उपयोगिता है। आपात दृष्टि से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ ५१ पृष्ठ पर्यन्त ही साधन के लिये उपयोगी है और परवर्ती अंश जिसमें 'माया यन्त्र' का सचित्र विवरण है तथा जिसे श्रद्धेय पालधि महाशय ने अपने जीवन दशा में ही प्रकाशित किया था, साधारण पाठक के लिये दुर्बोध होने के कारण अप्रकाश्य है। यह ठीक है। परन्तु यह भी सत्य है कि इसमें योगिवर का अपना अनुभव अपनी भाषा में वर्णित है। इसलिये यह अंश यत्न से रक्षा करने योग्य है। इस समय वह पुस्तक दुर्लभ हो गई है। सचित्र विवरण सहित 'माया यन्त्र' साधारण पाठक के लिये अबोध्य होने पर भी सुरक्षित रखना चाहिये, भविष्य में कभी किसी योग्य साधक के ग्रन्थि मोचन में कदाचित् यह सहायक हो। क्योंकि कवि की वाणी है—

"कालोऽह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"।

मैं आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थ जिज्ञासु समाज में यथोचित समादर प्राप्त करेगा।

गोपीनाथ कविराज

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

समर्पण पत्रिका

जिनके अनुग्रह से सुगम यह योग का सद्पन्थ है।
उन पूज्यपद गुरुदेव के करपद्म अर्पित ग्रन्थ है॥

विश्वात्मा लोकहितैषी पूज्य गुरुदेव के चरण-कमलों में इस "जीवन-लक्ष्य और साधना" ग्रन्थ सुमन को समर्पित करता हूँ। इससे गुरु परमात्मा प्रसन्न हों, लोक-कल्याणार्थ आशीर्वाद-प्रद हों।

हे भगवन् गुरुदेव ! शरीर आदि में स्थित मैं जो कोई भी हूँ, अथवा गुणों से जैसा भी हूँ, वैसा ही मैं अपने आप को आप के चरण-कमलों में अर्पित करता हूँ।

आपका विनीत शिष्य
रामावतार



al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

निवेदन

प्राणिमात्र निरतिशय सुख-शान्ति का उपासक है। कस्तूरिका-मृग सदृश मायिक गहन विषय कण्टकाकीर्ण कानन में उस-सुख शान्ति की सुरभि के लिये रात-दिन भटकना केवल क्लेश मात्र है। परन्तु प्राणी जीवन-ज्योति बुझने पर्यन्त गुरु शास्त्र और आत्म कृपा के बिना उसे प्राप्त नहीं कर पाता। सांसारिक जड़ पदार्थों से चेतन आत्मा को सुख-शान्ति मिले यह चित्त का लालन मात्र है। अतएव आत्म-क्रिया योग से ही अन्तःकरण अन्तर्मुख होता है और मिथ्या अनुभूति का नाश तथा परम सत्य की उपलब्धि होती है। इसी कर्म पथ का पथ-प्रदर्शक मेरा यह जीवन-लक्ष्य और साधना ग्रन्थ है।

यह छोटा-सा अप्रतिम ग्रन्थ जो कि गुरुदेव-योगिराज श्रीहरिनारायण पालधि एवं योगिराज श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल तथा महातन्त्र-योगी, महामहोपाध्याय श्री पण्डित गोपीनाथ कविराज महाशय के सदुपदेशों का अन्यतम अङ्ग है। जिस क्रिया-योग साधना के बारे में अबतक अनेक प्रकार की बातें सुना करते थे, उसका सर्वाङ्गपूर्ण और समुज्ज्वल दर्शन जिज्ञासु को इस ग्रन्थ में होगा, जिससे कि, उनका अन्तरात्मा प्रसन्न हो उठेगा और अपने निज कर्त्तव्य की भावना जागृत हो उठेगी।

इसमें लिखे समस्त सिद्धान्त शास्त्रोक्त हैं। यह ग्रन्थ पूर्ण होते ही पूज्यपाद महातन्त्र-योगी श्री पण्डित गोपीनाथ कविराज को सुनाया, वे प्रसन्न हुए। मेरा परिश्रम प्रभुकृपा से सफल हुआ।

इस ग्रन्थ में गुरुदेव, योगिराज श्रीहरिनारायण पालधि महाशय की नतिनी श्रीवीणापाणी देवी (ट्रस्टी) एवं भतीजा श्री सुरेशचन्द्र पालधि (ट्रस्टी) महाशय ने गुरुदेव के मायायन्त्र का चित्र तथा देहतत्त्व, जिज्ञासु वर्ग में प्रचार के निमित्त छपवाने की अनुमति देकर सहयोग किया है इसके लिये मैं उनका अनुगृहीत हूँ।

निवेदक

रामावतार प्रसाद 'विशारद'

| Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
समर्पण पत्रिका			
१—निवेदन	....	....	
२—विषय सूची	....	....	
३—श्री श्यामाचरण लाहिड़ी का चित्र		....	
४—जीवन-लक्ष्य और साधना,	...	...	१
५—प्राणायाम क्या है	....	....	१८
६—देह रचना	...	...	१९
७—जीवन परिचय	....	....	२२
८—साधना	....	....	२५
९—अजया जाप साधना	....	....	२६
१०—नाद साधना	....	....	२९
११—मुद्रा साधना	....	....	३०
१२—दान साधना	....	....	३४
१३—योगिराज हरिनारायण पालधि की जीवनी		....	३६
१४—देह तत्त्व	....	....	३९
१५—योगिराज श्री भूपेन्द्रनाथ सन्याल की जीवनी		....	४६
१६—भूमिका	....	....	५२
१७—माया यन्त्र	....	....	५५
१८—प्रथम चित्र परिचय गर्भावस्था	....	....	५६
१९—गर्भावस्था की व्याख्या	....	....	५७
२०—द्वितीय चित्र परिचय भूमिष्ठावस्था		....	६१

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

२१—भूमिष्ठावस्था की व्याख्या	....	....	६३
२२—तृतीय चित्र परिचय प्रथमदीक्षा	....	....	६६
२३—तृतीय चित्र की व्याख्या	....	....	६८
२४—चतुर्थ चित्र परिचय यद्वितीय दीक्षा	....	....	७१
२५—चतुर्थ चित्र की व्याख्या	....	....	७३
२६—पंचम चित्र परिचय	....	....	७४
२७—पंचम चित्र व्याख्या	....	....	७६
२८—षष्ट चित्र परिचय	....	....	७७
२९—षष्ट चित्र व्याख्या	....	....	७८
३०—सप्तम चित्र परिचय	....	....	८०
३१—सप्तम चित्र व्याख्या	....	....	८१
३२—अष्टम चित्र परिचय	....	....	८३
३३—अष्टम चित्र व्याख्या	....	....	८४
३४—नवम चित्र परिचय	....	....	८५
३५—नवम चित्र व्याख्या	....	....	८५
३६—पुज्यपा परम गुरु देव नाहड़ी महाशय की वेदान्त व्याख्या से लिये गये अंश का हिन्दी अनुवाद	....	....	८८
३७—उपसंहार	....	....	८९

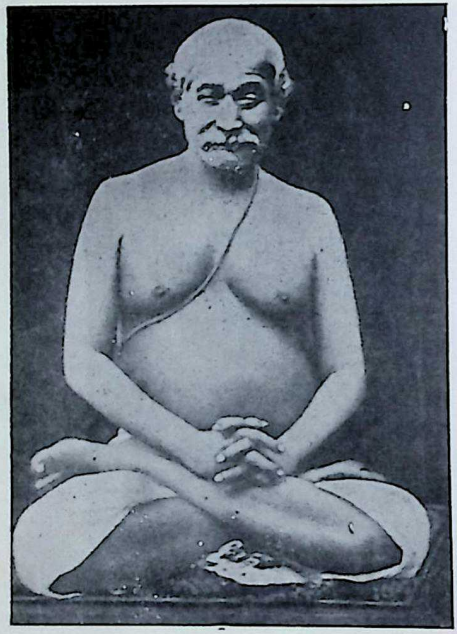
l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

योगिराजाः श्रीश्यामाचरण महोदयाः



सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

जीवन-लक्ष्य और साधना

मानव-जीवन का वास्तविक लक्ष्य एक मात्र भगवान् परमपूर्णानन्द की प्राप्ति है। स्वर्गादि सुख, सिद्धि, वैभव इत्यादि प्रकृति क्षेत्रगत पदार्थ हैं, इससे यह पूर्णानन्द नहीं मिल सकता। सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म ही उस पूर्णानन्द का अधिष्ठान है। उससे भिन्न किसी भी फल के लिये किये जाने वाले साधन बन्धन ही हैं। हम कौन हैं? इसीका हमें पता नहीं। हम अपने को भूलकर अनादि काल से भव-सागर रूपी प्रकृति के प्रवाह में नाना विध शरीर धारण करते हुए काल की गति से बहे जा रहे हैं। न जाने किस जगह पहुँचने पर इस अविरत प्रवाह से छुटकारा प्राप्त होगा। इसलिए पहले अपने आप को ढूँढ़ना होगा, इसके बिना सुख का पता नहीं लग सकता, न मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चिरकाल के लिए शान्ति प्राप्त कर सकता है।

इस भव-नदी में अगाध जल है। जिसका प्रवाह भी तेज है। ग्राहों से परिपूर्ण होकर और भी भयानक हो रही है। हम सभी उसपार जानेवाले यात्री हैं। नदी के तट पर आकर बैठे हैं। बैठे-बैठे सोच रहे हैं कि इस अपार स्रोतस्विनी को पार कैसे करें। भीषण जल-जन्तुओं से भरे घोर आवर्तमय अगाध जल-राशि को पार करने के लिए उत्तम तरणी और सुदक्ष कर्णधार की आवश्यकता है।

हम अपार संसार-सागर में डूब रहे हैं, क्या हमारे लिए कोई आश्रय है? भगवान के शरणापन्न हुए बिना इस संसार-सरिता को हम कैसे पार करेंगे? इस जगत में हम निरन्तर आते-जाते हैं। नदी की तरङ्ग के समान संसार का यह आवागमन चल रहा है इसका अनुभव भी नहीं किया जा सकता। इसी से अत्यन्त कातर होकर नदी के किनारे बैठ कर रो रहे हैं कि इस भीषण जल-जन्तुओं से भरे घोर आवर्तमय अगाध जलपूर्ण संसार-सरिता से कौन हमें

oal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

पार करेगा ! दयालु गुरु ने दया कर संसार-मग्न जीव को बतला दिया कि तुम शरणापन्न होकर व्याकुल चित्त से श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करो। और उनसे कहो भगवन् मेरी नैया पार लगाओ।

हे पार के जाने वालो ! क्या भव-नदी को देख कर तुम सचमुच ही भयभीत हो रहे हो ? घोर अन्धकार से दिशाओं को आच्छन्न देख कर तुम्हारे प्राण क्या निराश होकर रो रहे हैं ? नाविक तुम कौन हो ? यह कह कर तुम भव-सिन्धु के किनारे क्या उच्चस्वर से क्रन्दन करके किसी को पुकार रहे हो ? यदि इस प्रकार त्रस्त और व्याकुल चित्त से पुकार सको तो पुकारो, बारम्बार पुकारो। तुम्हारी पुकार सुनकर जिनका पाद-पद्म इस भव-सागर को पार करने की नौका है वह प्रभु तुरन्त आ पहुँचेंगे और तुमको अपनी नौका में (चरण सरोज में) स्थान भी देंगे। इसलिये एक बार इस तरह पुकारो जिस तरह मृत्यु को निकट आते देख कर भक्त प्रह्लाद ने आर्त भाव से पुकारा था; जिस प्रकार हिंस्र-जन्तुओं से संकुल निर्जन वन में भय से विह्वल चित्त होकर ध्रुव ने पद्म-पत्र लोचन कह कर प्रभु को पुकारा था; जिस प्रकार सभा में विवसना करने के लिये दुःशासन को उद्यत देख कर द्रोपदी ने प्राण-खोल कर हृदय से उनको पुकारा था और जिस प्रकार गज ने ग्राह के भय से हताश होकर व्याकुल चित्त से उनको पुकारा था। एक बार भी यदि तुम इस प्रकार पुकार सको या दत्त-चित्त से उनको स्मरण कर सको तो वह अवश्य पास आकर उपस्थित हो जायेंगे तथा अपने कर-कमलों से अभय प्रदान करके चिरकाल के अशान्त हृदय में शान्ति स्थापित करेंगे।

हमारा भय और विक्षेप ये दोनों संसार नदी के दो तट हैं। विविध कामनाएँ इस नदी का जल है। जब तक हमारी असंख्य कामनाएँ बनी रहेंगी, तब तक अध्यात्म का मार्ग बन्द समझो। दुर्वचन संसार नदी के ग्राह हैं। निन्दित कर्मों में रुचि ही संसार प्रवाह के घोर आवर्त्त रूप है। इस आवर्त्त में पड़ जाने पर उठने की सामर्थ्य किसी में नहीं होती। ममता संसार-नदी का प्रवाह है, यदि यह नहीं होती तो वह नदी सूख जाती। जिस संसार

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

का न आदि है और न अन्त "नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा" इस संसार को ममता के द्वारा ही हम जकड़े हुए हैं, जो सदुपदेश सुनकर भी नहीं सुनते, सभी बातों पर से जिनका विश्वास उठ गया है, मन में दिन-रात कितनी ही कल्पनाएँ उठा करती हैं, तथापि सारे मनोवेग में कुछ स्थायीपन नहीं होता। ये ही संसार नदी के मकर हैं। ये ही पार जाने वाले यात्रियों के तीन भाग खा जाते हैं। इस अनन्त वासना वेगमयी रण-नदी से जो हमें पार लगावेंगे वह कूटस्थ चैतन्य-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित हैं।

हमारे अनेक बार जन्म हुए हैं, अनेक बार इस संसार में आये हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि विषयों के मदिर गन्ध से अन्धे होकर उनके पीछे अनेक जन्म खो चुके हैं। अहंकार, अविश्वास परपीडन, लम्पटता, कपट और अभिमान रूपी कलिमल में सारा शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि पङ्किल हो उठे हैं। उससे एक वमनकारी दुर्गन्ध निरन्तर बह रही है। आज हम अपने अन्तःकरण की भीषण दुर्गन्ध से स्वयं व्याकुल हो रहे हैं, क्रमशः दुर्गन्ध असह्य होती जा रही है। हमारे शरीर और मनसे निरन्तर उठने वाली यह पूति गन्ध किस प्रकार दूर होगी, यह भीषण कलिमल कैसे मिटेगा, क्या कोई बतला सकता है ? हे सज्जनो, उदार हृदय साधु जन ! क्या आप लोगों के पास इसकी कोई औषधि है ?

सुनो, परम कारुणिक शास्त्रकार ऋषिगण हमारे दुःख से व्यथित होकर हमको पुकार कर उच्चस्वर से कह रहे हैं "हे चिर रोगी, रास्ता भूले हुए पथिक, तुम्हारे सारे अङ्ग जिन व्रणों से भरे हैं उनसे बड़ी विकट दुर्गन्ध निकल रही है। क्या तुमको इसका भान हो रहा है ? अब तक तुमने रोग को रोग नहीं समझा केवल उदासीन बने बैठे रहे, अब तो उस रोग के कीटाणु सारे शरीर और मनको दूषित करके जीर्ण-शीर्ण बना रहे हैं। यदि अपनी दुर्दशा को इस बार तुमने समझा हो, यदि अपनी दुर्गन्ध से अस्थिर हो रहे हो, तो एक बार हृदय को जुड़ा देने वाले, तथा नेत्रों को लुभाने वाले उस ज्ञान

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

सरोवर को देखो एक बार उसमें अवगाहन करो, एक बार उसमें अपने को निमज्जित कर दो तो तुम देह और मन के विविध व्रणों और अजस्र दुर्गन्ध युक्त पूयराशि तथा उससे उठने वाली वृश्चिक-दंश जैसी जलन से मुक्त हो जाओगे।

एक बार सब कुछ भूल कर इस स्वच्छ नीर में उतर पड़ो और मुंह से बोलते जाओ "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे" और एक बार इधर देखो, ज्ञान सरोवर के बीच में उसके अथाह जल को भेदते हुए कैसा सुन्दर शोभामय, अपरूप कमल फूट निकला है, उसे जरा आँखें खोल कर देखो तो। तुमको दीख पड़ेगा कि उसकी अपूर्व सुषमा से, अनन्त सौरभ से, उसके स्निग्ध किरणों से दिग्दिगन्त भर उठा है। भक्ति के मृदु पवन की हिलोरों से प्रवाहित होकर उसकी अपूर्व सुगन्ध तुम्हारी देह और मन में पवित्रता की अमोघ औषधि का अनुलेपन कर रही है। वह देखो तुम्हारे सारे व्रण सूख गये, उनकी सारी दुर्गन्ध दूर हो गयी। तुम अब कितने सुन्दर और मनोहर दीख रहे हो। तुम्हारी देह प्राण और मन को मानो नये ढङ्ग से गढ़ दिया है।

वह देखो, जल में कितने फूल खिले हैं। इसके बीच में देखो एक अपूर्व सुरभित मोदित कमलिनी ! उसकी कितनी सुन्दर और स्निग्ध गन्ध है। वही गीता है। जब गीता को समझ सकोगे तो उसकी अपूर्व सुषमा से तुम मुग्ध हो जाओगे, तब तुम्हारा जीवन भी एक सुन्दर पद्म में परिणत हो जायेगा। तब तुम उस शोभा भरे गन्ध से पूरित हृदय-कमल को श्रीकृष्ण के चरणों में अञ्जलि प्रदान कर कृतार्थ हो जाओगे।

कमला निरन्तर जिनकी चरण-सेवा कर रही है उस षड् ऐश्वर्य सम्पन्न रमापति भगवान् श्रीकृष्ण को वन्दना करने से सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं इसमें सन्देह नहीं। जो मन के द्वारा निरन्तर उनके शरणापन्न होते हैं और साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनके चरणों में प्रणत होते हैं वे पंगु वाक्-शक्ति विहीन अथवा बधिर ही क्यों न हों, उनसे बढ़ कर सौभाग्यशाली और कोई नहीं हो सकता। निश्चय ही उस समय सारे दुर्भाग्यों के दूर होने में पल

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मारने की भी देर नहीं लगती। परन्तु इस भूतल पर न जाने कितने भक्त, कितने ज्ञानी अजस्र कष्ट पा रहे हैं, उनका दुःख तो दूर होते नहीं देखा जाता, इसका कारण यह नहीं कि भगवान् में सामर्थ्य की कमी है। यथार्थ भक्त साधक कभी इस प्रकार की दया की भिक्षा ही नहीं मांगते। वे केवल उनके स्मरण के आनन्द में डूबे रहना चाहते हैं। अन्न जुटा या नहीं, दुःख मिटा या नहीं—इसकी उनको तिल भर भी चिन्ता नहीं होती इसलिए भक्त कबीर ने कहा है—"भक्ति भेख बड़ अन्तरा जैसे धरनि अकास। भक्त जो सुमिरे राम की भेख जगत की आस।" वास्तविक भक्ति और भेख में बड़ा अन्तर होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पृथ्वी और आकाश में अन्तर होता है। जो भक्त हैं वे और किसी की अपेक्षा नहीं करते, आत्माराम की शरण में जाकर वे केवल उनका ही स्मरण करते हैं; और जो भक्त का साज बनाये फिरते हैं वे केवल जगत् की ओर देखते हैं। अतएव जो चतुर पुरुष हैं वे भगवान् की उपासना के द्वारा जीवन को कृतार्थ करने की चेष्टा करते हैं।

योगी लोग तद्गत चित्त होकर मन में मन को डुबा कर उनके स्वरूप का दर्शन करते हैं। हम भी यदि उनको देखने की इच्छा करते हैं तो अपने चित्त को तद्गत करना होगा। यदि अपने भीतर कुछ भी अभिमान है तो हम उनमें पूर्णतः मग्न नहीं हो सकते। अतएव सब भूल कर, सब छोड़ कर एकाग्र चित्त से उनका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। हमारे नेत्र मन और बुद्धि के लिये अगोचर होते हुए भी वह प्रत्येक के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं। अतएव यदि हम उनके लिए कातर होकर उन्हें पुकारें तो हमारे कातर-क्रन्दन को सुनकर वह दयालु प्रभु निश्चय ही रुक न सकेंगे। वह हमारे आत्मीय हैं, निज जन हैं, वह हमारे हैं, वह सबके सर्वस्व प्रियतम आत्मा हैं। हमारा आह्वान सुन कर वह हमारे सन्मुख निश्चय ही आवेंगे।

परन्तु जिसमें विवेक-वैराग्य नहीं है, यथार्थ भक्ति भी नहीं है तथापि भगवान को आह्वान कर उन्हें पाना चाहता है, उसके लिये उपाय क्या है? बहुत से लोग यह अच्छी तरह समझते हैं कि भगवान के बिना जीवन-ज्वाला शान्त नहीं हो सकती, परन्तु उनको पाने के लिए मन में आग्रह या व्याकुलता

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

होते न देख निराश हो जाते हैं। इस श्रेणी के लिए योगाभ्यास ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। अधिकांश लोग इसी श्रेणी के होते हैं। वे जब सब कुछ समझते हैं तो उनके मन में वैसा आग्रह क्यों नहीं होता ?

इसका कारण यह है कि पुराकृत कर्मों के फलस्वरूप उनका मन अत्यन्त चञ्चल रहता है और मन की चञ्चलता के कारण वह अपनी बुद्धि को एक विषय में स्थिर नहीं रख सकते बुद्धि की स्थिरता के अभाव में अज्ञान और विषयों में आसक्ति होती है। यह विषयासक्ति ही सारे दुःखों और तापों का मूल है। बहुत विचार करने पर यद्यपि अज्ञानमेघ थोड़ी देर के लिए दूर हो जाता है परन्तु वह अवस्था ? नहीं रहती, अतएव मनोवेग के शान्त न रहने के कारण हम एकाग्र चित्त से भगवत्स्मरण नहीं कर पाते। यही कारण है कि लाख चेष्टा करने पर भी मन ज्वाला नहीं मिटती। जिससे विवश होकर मन न जाने कहां-कहां भटकता है। इस विक्षिप्त चित्त में हम इस आत्माराम को समझने की चेष्टा करके भी ठीक नहीं समझ पाते; पकड़ने के लिए बढ़ते हैं पर पकड़ नहीं पाते।

प्राण का अविरत स्पन्दन ही अशान्ति का मूल कारण है। जब तक प्राण का वह स्पन्दन बना रहेगा तबतक चित्त स्थिर होना सम्भव नहीं। अतएव प्राण के स्पन्दन को रोकने के लिए क्रियायोग या योगाभ्यास करना आवश्यक है। जिनके मन में ब्रह्म विचार का उदय नहीं होता, जो अपने संसार में ही अत्यन्त व्यस्त रहते हैं, वे कर्म तथा उसके खटराग को लेकर पड़े रहें परन्तु जिनको आसक्ति है तथापि कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिये व्याकुल हैं ऐसे लोगों को निष्काम कर्म का अवलम्बन करना चाहिये।

वह निष्काम कर्मयोग की साधना ही आत्मक्रिया या योगाभ्यास है। क्रियायोग तथा इस विषय की विविध साधनाओं की आलोचना श्री भगवान् ने गीता के चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ तथा पञ्चदश अध्यायों में की है। इस क्रिया-योग की साधना क्या ज्ञानी क्या भक्त और क्या कर्मी सबके लिये अत्यन्त ही आवश्यक साधना है। यथार्थतः यही कर्मयोग है, इस क्रिया के द्वारा ही

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

सारे कर्म ब्रह्मार्पण किये जा सकते हैं। श्रीभगवान ने यद्यपि 'नहि ज्ञानेन-सदृशं पवित्रमिह विद्यते' कह कर ज्ञान की प्रशंसा की है, परन्तु उस ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र उपाय योगाभ्यास है। इसी कारण आगे कहा है कि 'तत्स्वयं योगसंसिद्धि :—कालेनात्मनि विन्दति' साधक उस आत्मज्ञान को योग संसिद्धि के द्वारा यथा समय आत्मा में स्वयं प्राप्त करता है। परन्तु कर्मयोग के बिना वह प्राप्त नहीं होता।

सुदीर्घ काल तक कर्मयोग का अभ्यास किये बिना आत्मा विषयक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। योगाभ्यास के द्वारा योग्यता प्राप्त होती है। योग्यता प्राप्त होने पर अनायास ही ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्राणायामादि योगाभ्यास करने वाले पुरुष के विवेक ज्ञान के आवरण रूपी कर्म क्षीण हो जाते हैं। श्रीभगवान् ने योगाभ्यासी की प्रशंसा करते हुए अर्जुन को योगी होने के लिए कहा।

यदि क्रियायोग ही एक मात्र कर्म है तो अन्य सैकड़ों कर्मों को हम क्यों करें तथा उनको करने से लाभ ही क्या है ? इसी प्रश्न की मीमांसा करते हुए भगवान ने गीता के तृतीय, अष्टम और अष्टादश अध्यायों में विशद रूप से अर्जुन को समझा दिया है कि ये सारे कर्म किस प्रकार अनुष्ठित होने पर भगवत्प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के क्या-क्या स्वाभाविक कर्म हैं, इसका उल्लेख गीता के अष्टादश अध्याय ४२, ४३, ४४, ४५ श्लोकों में मिलता है। स्वाभाविक कर्मों के करने का अधिकार चाण्डाल पर्यन्त सभी मनुष्य को है और स्वाभाविक कर्म करने से किसी को पाप नहीं लगता। जैसे जीव हिंसा ब्राह्मण के लिए पाप होने पर भी निषाद के लिये पाप नहीं मानी जाती। क्योंकि स्वकर्म में लगा हुआ व्यक्ति स्वकर्म के द्वारा भी सिद्धि यानी ज्ञान की योग्यता प्राप्त करता है। यह छोटी बात नहीं है। इसी कारण किसी को अपने कुल के प्रति घृणा का भाव नहीं पैदा होना चाहिए। क्योंकि स्वकुलोचित कर्मों को करते हुए यदि ईश्वर में निष्ठा बनी रहे अर्थात् भगवत्प्रीति के लिये ही कर्म किये जायँ तो मनुष्य को नरक का भय नहीं रहेगा। बल्कि भगवान ने, पर धर्म श्रेष्ठ हो तो भी उसको ग्रहण करने

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

को निषेध किया है वहाँ भगवान ने एक बहुत बड़ी और चमत्कार पूर्ण बात कह कर जगत् के सभी जीवों को अभयदान दिया है। चाहे जिस प्रकृति का आदमी हो, किसी कुल में उत्पन्न हुआ हो, सबको स्व-स्व कर्म में उत्साह दिखलाना पड़ेगा। जो रजोगुणी हैं अर्थात् जिनकी कर्म चेष्टा स्वभावतः ही बहुत अधिक है वे स्वार्थ द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके कर्म स्रोत में बह जाते हैं, अतएव उनको नियमित होकर कर्म करने का उपदेश भगवान ने दिया है।

असंयत भाव से फल कामना युक्त होकर कर्म करने पर कर्म-प्रवाह मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जायेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं है। केवल कर्म, केवल कर्म, दिन-रात साँस लेने की फुरसत नहीं, इस प्रकार कर्म करने का अर्थ है कर्म का उद्देश्य और जीवन के साथ उसका सम्बन्ध न जानकर जीवन के प्रकृत उद्देश्य और लक्ष्य को व्यर्थ कर देना। अतएव इस प्रकृति के लोगों को बतलाना होगा कि कर्म का उदार क्षेत्र क्या है।

जिनको ज्ञान प्राप्त है उनके सामने यह जगत् अविद्या कल्पित और मिथ्या निरूपित है। अतएव ऐसे आत्मज्ञ पुरुष के लिए कर्म अकर्म के फलाफल या पाप-पुण्य की तरङ्ग उठती ही नहीं वे जानते हैं कि कर्म के प्रवर्तक ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञान तथा कर्म के आश्रय कारण कर्म और कर्त्ता क्या वस्तु हैं और यह भी जानते हैं कि आत्मा किसी कर्म के आश्रय में नहीं है। परन्तु जो ज्ञानी नहीं हैं, कर्म फल में जिनकी अत्यन्त आसक्ति है उनको समझना होगा कि दूसरों के मङ्गल में ही तुम्हारा मङ्गल है, केवल अपना कल्याण ही कल्याण नहीं है। अतएव देवता के उद्देश्य से परोपकारार्थ कर्म करो तभी तुम्हारा यथार्थ मंगल होगा। 'भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कार्यसंज्ञितः'। देवता के उद्देश्य से त्याग रूप यज्ञ ही कर्म कहलाता है; इस प्रकार कर्म करने से कर्म में परपीड़ा का अभाव होगा और उससे आसक्ति का नाश हो जायेगा। ऐसा होनेपर मन की सात्त्विकता की वृद्धि होगी। सात्त्विकता की वृद्धि के साथ-साथ जीवन को भगवदभिमुख करने के लिए आग्रह उत्पन्न होगा और उस आग्रह के बढ़ने पर उसकी कर्मचेष्टा भक्ति के रूप में परिणत हो जायेगी। इस अवस्था में ही सर्वकर्म ब्रह्मार्पण हो सकते हैं। सर्वकर्म

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

ब्रह्मार्पण होने पर ही जीवन को विशुद्ध भक्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसे ही ब्राह्मीस्थिति कहते हैं।

इसे प्राप्त कर जीवन फिर किसी कारण से भी मोहग्रस्त नहीं होता। समस्त गीता में यह परम पावन भाव अति दृढ़ता पूर्वक और अति मनोज्ञ भाव से वर्णित हुआ है। परन्तु मन में समता हुए बिना इस प्रकार कर्म नहीं किये जा सकते। क्योंकि प्राण के चञ्चल रहने पर चित्त का विक्षेप नष्ट नहीं होता। तब फिर मन की समता कैसे आयेगी? इसके लिए प्राणायाम आदि योग कौशल का सहारा लेना पड़ेगा। योगी याज्ञवल्क्य प्राणायाम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

प्राणायामपराः सर्वे प्राणायामपरायणाः।
प्राणायामैर्विशुद्धा ये ते यान्ति परमां गतिम्॥
प्राणायामात्परं नान्यत्तारकं नरकादिव।
संसारार्णवमग्नानां तारकं प्राणसंयमः॥

प्राणायाम परायण सभी साधक प्राणायाम के द्वारा विशुद्ध होकर परम गति प्राप्त करते हैं। प्राणायाम के अतिरिक्त नरक से त्राण करने वाला और कुछ नहीं। भवसागर में डूबते हुए व्यक्ति के लिए प्राण संयम ही संसार-सागर से तैरने का उपाय है। योगशास्त्र में कहा है कि मूलाधार स्थित कुण्डलिनी-शक्ति ही ब्रह्मशक्ति है। यही हमारा जीवन है। इसको वश में किये बिना ज्ञान-भक्ति प्राप्त करने की सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। वह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मद्वार का अवरोधन कर सुख से निद्राभिभूत पड़ी है, इसीलिए हमारा जीव भाव किसी प्रकार भी नष्ट नहीं हो रहा है, विषय स्पृहा भी शान्त नहीं हो रही है तथा मन की चञ्चलता भी दूर नहीं हो रही है। इसी कारण मन अशान्त होकर भटक रहा है। योगाभ्यास के द्वारा इस कुण्डलिनी-शक्ति को चैतन्य कर सकने से मनुष्य-जीवन सार्थक हो जाता है।

हमारे देश में दीक्षा ग्रहण किये हुए सभी लोग शायद नहीं जानते कि कुण्डलिनी-शक्ति ही उनके स्व-स्व इष्ट देवता के रूप में

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विराजमान हो रही है। उसे जाग्रत न कर सकने से मन्त्र-यन्त्र की सारी अर्चना व्यर्थ हो जाती है। प्राण का ही एक और रूपान्तर मन है। क्रिया के द्वारा मन अणुस्वरूप हो जाता है तब मन के साथ प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है। तभी कुल कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होती है। कुण्डलिनी की निद्रा भंग हुए बिना आत्मा अथवा परमात्मा में स्थिति नहीं हो सकती। कुण्डलिनी का स्वरूप क्या है? और उसका जागरण (चैतन्य सम्पादनी) क्या है! इस कुण्डलिनी का दूसरा नाम आधार शक्ति है। कुण्डलिनी का जागरण और सर्वत्र ब्रह्म साक्षात्कार एक ही वस्तु है। यह जागरण क्रम से होता है। अरणि मंथन करने से जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित की जाती है उसी प्रकार योगाभ्यास क्रिया प्रणाली द्वारा प्रसुप्त कुण्डलिनी को जगाना पड़ता है। अग्नि जिस प्रकार प्रकट होते ही ईंधन (काष्ठादि) को दग्ध करती है उसी प्रकार कुण्डलिनी के चैतन्य होने पर साधना विलुप्त हो जाती है। जिस समय कुण्डलिनी चेतन होने लगती है, उस समय स्वभाव के नियम से ही सब कार्य स्वयं ही होते जाते हैं। जिस प्रकार अनुकूल स्रोत में नौका छोड़ देने से उसको समुद्र में पहुँचाने के अन्य प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती इसी प्रकार कुंडलिनी के जागने से उसके प्रवाह में प्राण वा मन को डाल देने से जीव को ब्रह्मावस्था प्राप्त करने के लिए पृथक उपाय करने की आवश्यकता नहीं होती।

कुंडलिनी जागरण के साथ ही साथ इड़ा पिङ्गला में प्रवाहमान स्रोत सूक्ष्मता को प्राप्त करता हुआ सुषुम्ना के मार्ग में प्रवेश करता है और ऊर्ध्व में उठता हुआ क्रम से वज्रा और चित्रा नाड़ी को भेद कर अन्तशेष में ब्रह्मनाड़ी अथवा आनन्दमय कोष में गमन करता है। बस यही ऐश्वर्यावस्था है। जिस समय आनन्दमय कोष की तरफ ध्यान नहीं रहता उस समय गुणातीत परम साम्यावस्था की प्राप्ति होती है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर ही जीव ऊर्ध्वगति का आरोहण करने लगता है। समाधि का क्रम विकास अथवा कुण्डलिनी की क्रमोन्नति दोनों एक ही पदार्थ हैं क्योंकि मनुष्य देह में वह कुण्डलिनी शक्ति सप्तरूपेण विद्यमान रहती है। इसी कारण मनुष्य देह का इतना

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

महत्त्व है। इसकी निद्रित शक्ति को जगाने से वह क्रमशः ऊपर की ओर उठने लगती है। इस प्रकार क्रमिक-उत्थान के प्रभाव से मनुष्यत्व के विकास में जितने विकल्प जाल हैं, सबका नाश हो जाता है।

योगाभ्यास साधन के द्वारा एकचक्र को भेद करके चक्रान्तर के भेद इसी उद्देश्य से करना पड़ता है। षट्चक्र का भेद पूरा हो जाने पर आत्मा का तृतीय नेत्र मल शून्य होकर स्वच्छ और प्रसन्न हो जाता है। विकल्पों की निवृत्ति हो जाने पर निर्विकल्प स्वरूप का स्वतः ही दर्शन होता है, अर्थात् उस समय ज्ञान नेत्र उन्मीलित होता है और शिवोऽहं रूपेण आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है।

साधना और सद्गुरु की कृपा से कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है। शक्ति जागरण के मूल में प्राण और अपान शक्तियों का साम्य-स्थापन होता है। प्राण और अपान के द्वारा यावत् विरुद्ध शक्तियों का संग्रह समझना चाहिये। विरुद्ध शक्तियों में साम्य होना ही समान वायु की क्रिया का फल है। इस समय निद्रित कुण्डलिनी-शक्ति जाग उठती है। योगी का मन इस जाग्रत कुण्डलिनी-शक्तिरूपा अग्नि के साथ मिलकर एक हो जाता है।

इस कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने के लिये प्राणायामरूप योग-कौशल जानना चाहिये। प्राणायाम के द्वारा ही श्वास चैतन्य युक्त होता है, इससे सुषुम्ना का मुँह खुल जाता है। इससे मन का त्राण होता है अर्थात् चाञ्चल्य रहित होकर स्थिरता प्राप्त करने के कारण यहाँ मन्त्र के मन्त्र नाम की (मननात् त्रायते) सार्थकता दृष्ट होती है। तन्त्र में लिखा है—

"शिवादिकृमिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्तनम्।
निःश्वास-श्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये॥"

शिव से लेकर कृमि पर्यन्त प्राणियों के प्राणवर्तन रूप श्वास-प्रश्वास को मन्त्र कहते हैं।

oal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

मन्त्र का यथार्थ मानी है, श्वास और उसको चैतन्य करने का उपाय श्वास-क्रिया या प्राणायाम। प्राणायाम के द्वारा तथा योनिमुद्रा की सहायता से उस जगत प्रसविता की वरणीय शक्ति या तेज के प्रकाश का अनुभव होता है। उस तेज के अन्तर्गत एक कृष्णवर्ण गोलक दीख पड़ता है, उसको भ्रामरी गुहा भी कहते हैं। इस गुहा में स्थित पुरुष को जान लेने पर ही जीव का जन्म सार्थक हो जाता है। दूसरा उपाय नहीं है। क्योंकि इस क्रिया की परावस्था ही मोक्ष है, उस मोक्ष की ओर दृष्टि न हो तो मन संसार-चक्र में निविष्ट होगा ही। प्राणायाम योग-कौशल के द्वारा जब तक प्राणवायु मस्तक में चढ़कर नहीं बैठती, तब तक मन कदापि शान्त न होगा और न काम क्रोध की निवृत्ति होगी। ग्रहण और त्याग की इच्छाओं को काम कहते हैं। इच्छा में बाधा पड़ने पर वह क्रोध के रूप में प्रकट होती है।

संसार-क्षेत्र में और विशेषत: साधना के क्षेत्र में ये ही प्रधान शत्रु हैं। प्राणायाम करते-करते ब्रह्मनाड़ी का भेद होने पर ही प्राण और उसके साथ मन का उपराम हो जाता है। इसलिये खूब मन लगाकर प्रच्छर्दन-विधारण करना पड़ता है। सदा श्वास में ही लक्ष्य रखना पड़ता है। शास्त्र कहते हैं कि "कामनिग्रह ही धर्म और मोक्ष का बीज है। निर्भयता और योगाभ्यास के बिना काम जय नहीं होता।"

कभी-कभी हमारे मन में आता है कि काम क्रोधादि शत्रु हमारे मन से निकल गये हैं, परन्तु वह भूल है। वासना की वायु तनिक भी बही, कि न जाने वे कहाँ से भस्माच्छादित अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठते हैं। जीव के विवेक ज्ञान को वे ही नष्ट करते हैं। यदि काम और क्रोध न होते तो किसी के लिये आत्मदर्शन कठिन न होता। क्योंकि वासना मन का कार्य है। मेघाच्छादित सूर्य जब मेघ-मुक्त होता है तब जैसे उसका प्रकाश पुन: देखने में आता है, मन के वासना शून्य होने पर आत्म प्रकाश भी उसी प्रकार लक्षित होने लगता है। वासना या काम आत्मा के आवरक हैं। जैसे मेघ, जल, सूर्य को आवृत्त करता है तो उसकी रश्मि पूर्णत: लुप्त नहीं होती, उसी प्रकार

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

आत्मा का सच्चिदानन्द भाव काम द्वारा आच्छादित-सा जान पड़ता है, परन्तु उसका प्रकाश पूर्णतः आच्छन्न नहीं होता। घनाच्छन्न सूर्य को देखने के लिए जैसे मेघ का दूर होना आवश्यक है उसी प्रकार आत्मा को देखने के लिए काम को हटाना आवश्यक है। ज्ञान स्वरूप आत्मा को काम तीन प्रकार से आवृत करता है, उसे यहाँ तीन दृष्टान्तों द्वारा दिखलाया गया है। काम ही अज्ञान का सुदृढ़ आधार है। काम नष्ट होने पर अज्ञान भी साथ ही साथ नष्ट हो जाता है। जीव स्थूल शरीर धारण करने के पहले पूर्व कर्मों के अनुसार अपने सूक्ष्म शरीर की रचना कर लेता है। वही पुनः अपने अदृष्ट के वश होकर माता-पिता के सहयोग से स्थूल पिण्ड-शरीर की रचना कर लेता है। निश्चय ही जीव का कारण शरीर पहले से ही रहता है क्योंकि जब तक मूल अविद्या नष्ट नहीं होती अर्थात् भक्ति-लाभ नहीं होता, तब तक वह नष्ट नहीं होता है। प्रत्येक जन्म में जीव के सूक्ष्म शरीर की सृष्टि के साथ काम भी सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म भाव से विद्यमान रहता है। स्थूल शरीर प्राप्त होने के बाद जैसे-जैसे स्थूल शरीर को पुष्टि होती है, वैसे-वैसे यह सूक्ष्म शरीर भी पुष्ट होता जाता है, और उसमें निहित वासना बीज भी क्रमशः विकसित होता जाता है। भीतर वासना रूप अग्नि है ही, तनिक भी विषय संयोग रूपी वायु का योग मिलने पर धाँय-धाँय जल उठती है। इस कामाग्नि में जितना ही विषय-भोग रूपी हवि डाली जाय उतनी ही वह प्रज्वलित हो उठती है। इन्द्रियों के विषय दर्शन श्रवणादि, मन का विषय सङ्कल्प, बुद्धि का अध्यवसाय, इन तीनों के द्वारा काम का आविर्भाव होता है। विषय-भोग और विषय-तृष्णा इन्द्रियों के द्वारा होती है। इन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये तीन काम के निवास स्थान हैं।

मन के नाना प्रकार के काम सङ्कल्प तथा बुद्धि के आश्रय अध्यवसाय के सहारे काम विषय-रस का उपभोग करता है। जब वह इन सब विषयों के भोग में सचेष्ट होता है तो ज्ञान ज्योति आवृत हो जाती है। तब मोहान्धकार जीव को घेर लेता है और वह हिताहित ज्ञान से शून्य हो जाता है। तो फिर क्या जीव के उद्धार का कोई उपाय है?

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

विषय-तृष्णा के प्रबल होने पर विवेक-ज्ञान आवृत तो होता है सही, परन्तु विलुप्त नहीं होता। काम प्रबल होने पर ज्ञान दुर्लभ हो जाता है और काम तृप्ति को वस्तु प्राप्त होने पर लोभ का संवरण करना कठिन हो जाता है। जिस प्रकार नशाबाज नशा पीकर उन्मत्त हो उठता है उसी प्रकार जब मन निरन्तर विषयों की मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाता है तब उसका विवेक-ज्ञान आच्छादित हो जाता है। वह भूल जाता है कि वह भगवान का सेवक है, ज्ञान युक्त मानव है, यह धारणा भी उसको नहीं रहती। इससे परित्राण पाने का उपाय क्या है ? मन जिस प्रकार विषयोन्मुख होन पर विषय चिन्तन करते हुए विषयों का ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह आत्म मुखी होकर आत्मा में अवस्थित परमानन्द का उपभोग कर सकता है। क्योंक यह ग्रहण करने की स्पृहा मन का स्वभाव है। इसलिए परमानन्द रस का आस्वादन करने के लिए इसके विरोधी रस का त्याग करना पड़ेगा। प्राणायाम योग• कौशल के द्वारा प्राण स्थिर होने पर मन भी क्षीण हो जायगा अर्थात् सङ्कल्प शून्य हो जायगा तो फिर विषय स्पृहा नहीं रहेगी। तब मन और इन्द्रियादि ब्रह्मानन्द इसमें मग्न हो जायेंगे। मन सारी इन्द्रियों के वश में रहता है, इन्द्रियाँ जिन सब विषयों को लाकर उपस्थित करती हैं, मन बिना विचारे उसे ग्रहण करने के लिये उद्यत होता है। इन्द्रियाँ मन का वाहन बन कर उसको विषय-भोग कराती हैं। मन जब तक इन्द्रिय युक्त रहेगा, तब तक इसका कूदना-फाँदना बन्द न होगा। इसलिये योगाभ्यास (प्राणायाम आदि) करना जरूरी है, प्राणायाम करते-करते मन स्थिर हो जाता है, मन के स्थिर होने पर उसको फिर 'मन' नहीं कहते तब वह निरुद्ध रूप होकर एकाग्रता प्राप्त करता है, इसका नाम बुद्धि है, यह बुद्धि मन के साथ समान चञ्चल नहीं है क्योंकि मन जैसे अनेक विषयों में दौड़ता है, उस प्रकार बुद्धि बहुमुखी नहीं हो सकती। बुद्धि को साधन और विचार के सहयोग से आत्म मुख कर सकने पर फिर उसमें आत्मा के सिवा अन्य वस्तु भासित नहीं हो सकती।

प्राणायामादिक साधनों के अभ्यास से बुद्धि जब आत्ममुखी होती है तो

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

इन्द्रियों का चाञ्चल्य-विक्षेप नहीं रहता। अतएव इन्द्रिय-संयम उस समय अनायास सिद्ध हो जाता है। इन्द्रिय और इन्द्रिय विषयों में मन की गति निरुद्ध होने पर आत्म-स्वरूप का विकास होता है। तब वासना और उसके संस्कार चित्त के ऊपर कालिमा नहीं लगा सकते, तथा कामाग्नि तैल हीन दीप की शिखा के समान नष्ट हो जाती है। चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषय जो भीतर अनुभूत होते हैं, सूक्ष्म तत्व के कारण वे इन्द्रियों से श्रेष्ठ हैं। अंतः करण की विषय-ग्राहिका शक्ति विषयों से श्रेष्ठ है। मनसे निश्चयात्मिकावृत्ति वाली बुद्धि श्रेष्ठ है। बुद्धि से महान् आत्मा अर्थात् अन्तःकरण का आदि कारण हिरण्यगर्भ श्रेष्ठ है। हिरण्यगर्भ से मूल प्रकृति (महामाया) या भगवती या जीव की प्राणशक्ति का केन्द्र श्रेष्ठ है। उससे पुरुष अर्थात् परमात्मा श्रेष्ठ है, क्योंकि वह प्रकृति के भी अतीत है। उस परब्रह्म से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। वही इस भव-नदी का अन्तिम किनारा है। जन्म मृत्यु रूप संसार का वह 'पार' है। बिना योगाभ्यास-कौशल के काम निर्वासित नहीं होता। अतएव काम पर जय पाने के लिये प्राण को महाशून्य में प्रवेश कराना होगा। प्राण को शून्य पथ में सञ्चारित करते-करते ओंकार ध्वनि सुनने में आयेगी, उस ओंकार-ध्वनि के लय के साथ ही प्राण भी परब्रह्म में लय हो जायगा। तब फिर काम सिर न उठा सकेगा।

भगवान में जिनकी भक्ति है भगवान को न पाने से जिनका चित्त विषाद से भर जाता है। इस विषाद-सिन्धु में डूबते-डूबते भगवत्प्राप्ति के लिये उनके प्राण में व्याकुलता आती है। वह व्याकुलता साधन के बिना दूर नहीं होगी। व्याकुलता दूर होने पर ही भगवत निर्भरता आती है। तब सारे कर्मों को 'भक्त' भगवान के निमित्त करके निरहंकार हो जाते हैं। वह यही गीता है जिसमें श्री भगवान ने इन सारी बातों की विशद आलोचना की है। जीव के कल्याण के लिए भगवान ने तीन उपाय बतलाया है—ज्ञान, भक्ति और कर्म। इन तीन मार्गों के सिवा मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं। इन्हीं तीनों मार्गों के विषय में गीता में सम्यक् आलोचना की गयी है। जिस प्रकार मार्ग तीन हैं, उसी प्रकार अधिकार भी तीन प्रकार के होते हैं। अवश्य ही कोई अपनी इच्छा के

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

अनुसार मार्ग नहीं कर सकता। किसी का कर्म में अधिकार होता है, किसी का भक्ति में तथा किसी का ज्ञान में अधिकार होता है। इसलिये बलात् एक का अधिकार दूसरे के सिर नहीं डाला जाता; डालने पर अनर्थ ही होता है। अपना मार्ग मनुष्य स्वयं चुनता है। यदि चुनने में सुविधा नहीं होती तो सद्गुरु की कृपा से मार्ग निश्चित हो जाता है। यह अधिकार उन्हीं को है। जिस प्रकार नदी से जल लेने में जिसका जैसा पात्र होता है वह उतना ही जल ग्रहण कर सकता है, उसी प्रकार हमारे मन-बुद्धि के आधार और गठन के अनुसार हम अपने मनोनुकूल भावों के अनुसार ग्रहण कर सकते हैं। इसमें कोई दोष नहीं होता परन्तु जो भाव हमारे मनोनुकूल है वही ठीक है, तथा जो हमारे चिन्तन के विरुद्ध है वह ठीक नहीं है, यह कहना सत्य नहीं है। सारे भाव ठीक हैं सारे ही सत्य हैं। भगवान इतने विशाल और इतने विराट हैं तथा अनन्त भावमय हैं कि किसी भी एक भाव का आलम्बन करके साधना की जा सकती है। उसे कभी मिथ्या नहीं कहा जा सकता। कोई भी साधक उनमें से किसी भी एक का भाव के आलम्बन कर अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

इसी दृष्टि से गीता के साधनों का जब हम विचार करते हैं तो वह देख पड़ता है कि इसमें सामन्वयिक सहिष्णुता और सहिष्णु समन्वय भरा हुआ है। साध्य स्वरूप भगवान इसमें सबको ग्रहण कर रहे हैं।

> ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः (२।१३,४।११)
> समोऽहं स भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
> ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ (९।२९)

श्रीकृष्ण भाव के भूखे हैं, बाह्य आडम्बर के नहीं। ९।३०, ३१
सत्कर्म करने वाला पुरुष कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता। (६।४०)

भगवान् के भक्त का कभी नाश नहीं होता ९।३१ गीता किसी की श्रद्धा बुद्धि में भेद नहीं उत्पन्न करती (३।२६) साध्य सबका एक है और वह है

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

नित्य परमानन्द। इसे पाने के अनेक रास्ते हैं। जनकादिकों ने कर्मयोग के द्वारा इसे प्राप्त किया। (३।२०)

इस कर्मयोग में ध्यान और ज्ञान भी शामिल है, पर ज्ञानोत्तर कर्म में इसकी जड़ है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

योग में लगा रह कर आत्म निर्भर होकर, विशेष रूप से आत्मा में स्थित होकर, सारी इन्द्रियों पर जय करके सब भूतों की आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखकर—यह सब कर्म करते हुए भी कदापि लिप्त नहीं होता। अन्य कर्मों के द्वारा जीवन बन्धन होता है, परन्तु प्राण कर्मरूप योगाभ्यास के द्वारा चित्त निरुद्ध होने पर उस चित्त में सङ्कल्प की तरङ्ग फिर नहीं उठती। अतएव उसका मन निर्मल हो जाता है, और उस निर्मल मन में आत्म साक्षात्कार प्राप्त होता है। तब योगी सब इन्द्रियों पर जय पाता है अर्थात् तब इन्द्रियाँ अपने-अपने आग्रह के अनुसार नहीं चल सकतीं। योगी का शरीर भी उसके वश में रहता है। तब वह सब भूतों में अपने को ही उपलब्ध करता है। इसलिये बुद्धिमान का कर्त्तव्य है कि प्राण को सबसे पहले स्थिर करने की चेष्टा करे। प्राणायाम के द्वारा प्राण स्थिर होने पर मन भी साथ ही साथ स्थिर होता है। मन में सङ्कल्प की तरङ्ग न उठे तो उस मन को मन नहीं कहेंगे। यह स्थिरा बुद्धि या एकाग्रता क्रमशः इतनी घनी हो जाती है कि उसमें फिर किसी उद्वेग का चिह्न नहीं दीखता। वह उद्वेगहीन अचञ्चल शान्त मन ही आत्मा है। आत्मा चञ्चल होकर मन बनता है और इन्द्रियों में जाकर इन्द्रिय-विषयों में आसक्त होकर विषय-भोग करता है। यह आसक्ति सहज ही नहीं जाती। साधु सङ्ग करो, भगवत्कथा श्रवण करो, तब प्राण में भगवद्विरह की ज्वाला फूट उठेगी। तभी गुरूपदिष्ट प्राणायाम साधन के द्वारा मन स्थिर कर सकोगे। इससे सब दुःखों का, सारी उपाधियों का नाश हो जायगा। जिस प्रकार जल से उद्भूत बुदबुद जल में आत्म-विसर्जन करके जल में परिणत हो जाता है, उसका पृथक नाम-रूप तब नहीं रहता, उसी प्रकार आत्म-सागर का बुदबुद मन आत्मा में निमग्न होकर आत्म-स्वरूप हो जायगा।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

प्राणायाम क्या है? सर्वसाधारण की धारणा यह है कि प्राण वायु ही प्राण है। प्राणायाम का विवेचन करते हुए योग ग्रन्थों में प्राण वायु को प्राण और प्राणायाम को श्वासायाम कहा गया है। श्री पतञ्जलि महामुनि का वचन है—तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः अर्थात् श्वास-प्रच्छ्वास की गति का बन्द करना प्राणायाम है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी "प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ" अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे 'प्राणान् प्राणेषु जुह्वति' इत्यादि वचनों से प्राण शब्द का अर्थ प्राण वायु ही किया जाता है। नासाभ्यंतरी प्राण और अपान को जब सम किया जावे अर्थात् दोनों की एक गति की जावे और वह सम तभी होगी जब कि भीतर से दीक्षा दी जाय क्योंकि बिना प्राण अपान के सम हुए वे दोनों पूर्ण रूप से नासाभ्यन्तर नहीं होंगे; बिना नासाभ्यन्तर के शुद्ध हंस मन्त्र प्राप्त नहीं होगा; हंस मन्त्र के बिना ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिये सद्गुरु के द्वारा भीतर से ही दीक्षा होनी चाहिये। दीक्षा क्या पदार्थ है? प्राण अपान की जो विषम गति है उसको सम कर देना। इसी को शक्ति संचार भी कहते हैं। जिस समय सद्गुरु साधक में शक्ति संचार करते हैं, उस समय वस्तुतः ही उनका प्रतिभातत्त्व विकसित हो जाता है। शास्त्र में लिखा है—

तदागमवशात् साध्यं गुरुवक्त्रान्महाधिया।
शिव शक्ति करावेशाद्गुरुः शिष्यप्रबोधकः॥

जैसे भस्म, छिपा हुआ अग्नि मुख अथवा धौंकनी के वायु से दहक उठता है, जैसे ठीक समय में बोया और सींचा हुआ बीज अंकुर पल्लवादि रूप में अभिव्यक्त हो जाता है उसी प्रकार प्रतिभा ज्ञान भी गुरूपदिष्ट क्रिया के द्वारा व्यक्त होता है।

यही गुरूपदिष्ट क्रिया योग या प्राणयामादि साधना द्वारा प्राण को स्थिर करना पड़ता है। प्राण स्थिर न होने के कारण वह अविरत मन को विषय ग्रहण में स्पन्दित करता है। प्राण बहिर्मुख होकर ही संसार रूपी अकर्म को उत्पन्न करता है। जब तक श्वास इड़ा-पिङ्गला में बहता रहता है तब तक प्राण चंचल रहता है, और जीव की संसार-प्रवृत्ति रहती है।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

देह रचना

मनुष्य के पृष्ठ भाग के बीचोबीच जो लम्बी हड्डी है उसको मेरुदण्ड कहते हैं। वह खोखला है। उसके भीतर एक सुषुम्ना नाड़ी है, वह भी खोखली है, उसके भीतर कमल के फूल हैं; उन फूलों की कर्णिका भेद कर बज्रा नाड़ी का प्रवाह है, उस बज्रा नाड़ी के भीतर जो शून्य है उनमें त्रिकोण है। उन त्रिकोणों को भेद कर चित्रा नाड़ी प्रवाहित है इसी को वेद में त्रिवृत कहा है "त्रिवृतोऽसि" उस चित्रा नाड़ी के भीतर सबके नीचे आधारचक्र है, उसके ऊपर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहद, विशुद्धाख्या, मायाचक्र, आज्ञाचक्र, ललनाचक्र, सहस्रार यह सब दशचक्र हैं। उन्हीं चक्रों को भेद कर ब्रह्म नाड़ी अर्थात् चैतन्य का प्रवाह है। इनमें मूलाधारादि पांचचक्रों को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष के नाम से शास्त्र में व्यवहार करते हैं। इन में क्रम से गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द यह पंचतन्मात्रा हैं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पंचीकृत पंचमहाभूत है। यह मूलाधारादि पंचचक्र ही शब्द स्पर्श-रूप, रस, गन्ध के लीला क्षेत्र हैं।

जीव तत्काल में इस पञ्चचक्र के लीला क्षेत्र के मनोमय कोष में रहता है और उसका स्थूल शरीर से सम्बन्ध होता है इसी कारण पाँच वस्तुओं का बोध होता है, स्वप्नावस्था में विज्ञानमय कोष में सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध होने के कारण उस समय उन्हीं पाँच वस्तुओं का बोध होता है, सुषुप्ति अवस्था में आनन्दमय कोष में कारण-शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारक जड़ वस्तु का अभाव हो जाता है। इसी से चैतन्य वस्तु का तत्काल बोध होता है किन्तु उसको व्यक्त नहीं कर सकता। क्योंकि चैतन्य वस्तु इन्द्रियातीत है। यह तीनों कोष मणिपूर, अनाहत्, विशुद्धाख्या चक्र में है। मनोमय कोष में चित् शक्ति मनोरूपा इच्छा शक्ति स्वरूप से संशय करती है, विज्ञानमय कोष में वही शक्ति बुद्धिरूपा ज्ञान शक्ति स्वरूप से निश्चय करती है और आनन्दमय कोष में वही शक्ति क्रिया शक्ति स्वरूप से अभिमान करती है। इसी को संशयात्मक मन निश्चयात्मक बुद्धि और अभिमानामकोऽहङ्कार कहा गया है। चित् शक्ति को मिलाकर यही अन्तःकरण चतुष्टय हो जाता है। शक्ति के क्रियाशील होने

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

के कारण जाग्रदवस्था तथा स्वप्नावस्था में यह चक्र बराबर दक्षिणावर्त व वामावर्त में घूमा करता है सुषुप्ति अवस्था में तीनों चक्र ठहर जाते हैं तब बोध नहीं होता।

गर्भावस्था में इस शरीर के भीतर जीव की स्थिति :—सर्पाकार चेतन शक्ति चैतन्य के साथ मिलकर गति करती थी। ईश्वर चैतन्य है इसी कारण उसका सङ्ग छुड़ाने के लिये गर्भावस्था में जो गति थी वो भूमिष्ठावस्था में उसका परिवर्त्तन कर उस चेतन शक्ति ने अपने मुख के बाहर वाम तथा दक्षिण भाग में इड़ा व पिङ्गला दो नाड़ी की रचना की, फिर अपने मुख से दूसरी सांपिन पैदा करके इड़ा नाड़ी में उसका मुख और पिङ्गला नाड़ी में पोंछ को मायाचक्र तक प्रवाहित किया। उसी मुख के अंश में तमोगुण व पोंछ के अंश में रजोगुण की स्थिति करके पृथक-पृथक तीन नाड़ी में तीन गुण का प्रवाह किया।

गीता में "गुणप्रवृद्ध" ऐसा कहा है।

अब चित् शक्ति स्वरूपा कुण्डलिनी शक्ति वाम भाग में प्रकृति अर्थात् चेतन शक्ति स्वरूप से अधिष्ठित होकर सोऽहं शब्द में चन्द्र की गति करने लगी और दक्षिण भाग में पुरुष अर्थात् चैतन्य स्वरूप से अधिष्ठित होकर हंस शब्द से सूर्य की गति करने लगी। वाम तथा दक्षिण में चन्द्र-सूर्य्य की गति है। अब दोनों की प्रवाह गति होने लगी, तब इच्छा ज्ञान क्रियात्मिका चित् शक्ति, रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छा शक्ति स्वरूप से पिङ्गला नाड़ी में प्रवेश किया और मन के साथ रजोगुणात्मक जीव भी पिङ्गला नाड़ी में चला गया तब जीव की सुषुम्ना गति छूट गयी अर्थात् ज्ञान मार्ग बन्द हो गया (यह जीव की भूमिष्ठावस्था है)।

ऐसी अवस्था में राजस तामस बुद्धिरूपा अज्ञान शक्ति ने जड़ वस्तु अर्थात् शरीर जो कि पञ्च भौतिक है बोध करा दिया। प्राण की बहिर्गति हो गयी, इससे मन का विचरण भी लीला क्षेत्र में होने लगा। जब तक मन इस क्षेत्र में विचरण करता है तब तक विषयादि का आकर्षण होता है।

पूर्व अभ्यास और संस्कार मन को बलपूर्वक विषय में आकर्षण कराते हैं। मन तब विविध वृत्तियों के अधीन हो जाता है। बहुत समझाने पर भी मन का विषयों के प्रति आकर्षण कम नहीं होता। इसके लिये गुरु के उपदेशा-

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

नुसार साधना (योगाभ्यास) करनी पड़ती है। प्राणायाम (क्रियायोग) के द्वारा प्राण की गति इड़ा पिङ्गला से सुषुम्ना में प्रवाहित होती है। तब मूलाधारादि पञ्चचक्रों को भेद करके मन आज्ञा चक्र में आकर स्थिर होता है। इसका ही नाम आत्मा का उद्धार है। जो मन स्वभावतः बहिर्मुखी या विषयाभिमुखी होता है उसे अन्तर्मुखी करना पड़ेगा।

जो ऐसा नहीं करेगा वह अपने आप अपना शत्रु बनेगा। उसका मन पागल कुत्ते के समान अपनी ही यातना में छटपटाता हुआ चारो ओर भटकते-भटकते अन्त में काल के गाल में पड़ जायेगा और जो इस क्रिया-प्रणाली द्वारा विचार सम्पन्न होकर मन को अन्तर्मुखी बनाता है, वह अपना उपकार आप ही करता है, उसकी सारी ज्वाला निवृत्त हो जाती है, उसके सारे दुःखों का उपशमन हो जाता है।

मन की विषम-प्रवृत्ति के मूल में काम और काम के मूल में सङ्कल्प होता है, क्योंकि सङ्कल्प से ही काम जाग्रत होता है। गुरूपदिष्ट क्रियायोग प्राणायाम के द्वारा माला के समान चक्रों में मन को और श्वास को फिरा सकने पर काम सङ्कल्प निर्वासित हो जाता है। (गुरुगम्य साधन) क्योंकि मन की उत्पत्ति प्राण से है, प्राण चञ्चल होने पर ही मन को विषयाभिमुखी बनाता है; और वह विषयाभिमुखी मन सारे दुःखों का उत्पादक है। अतएव देखा जाता है कि प्राण की चञ्चलता से ही मन और इन्द्रियाँ चञ्चल होकर विषयान्वेषण में दौड़ती हैं। जिस समय उस क्रिया प्रणाली (उपाय) को प्राप्त कर लेते हैं उस समय उसके तारतम्य के अनुसार शीघ्र अथवा विलम्ब से अक्रम अथवा सक्रम भाव से वे संसार-सागर से मुक्त होकर अपने पूर्ण स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। धारणा शक्ति के अभाव से साधारण लोग भले ही यह बात स्वीकार न करें, परन्तु जब तक मनुष्य अपने स्वरूप में स्थिति प्राप्त न करेगा अथवा क्रम-से-क्रम स्थिति लाभ के सच्चे मार्ग में पदार्पण नहीं करेगा, तब तक उसको अपने शुभाशुभकर्मों के अधीन होकर उनके सुख दुःख रूप फल भोगने के लिये तदनुरूप विभिन्न स्थानों में निरन्तर भटकना पड़ेगा तथा बाध्य होकर जन्म-मरण के चक्र में नियमतः आवर्तन करना पड़ेगा; यही ससार है। बिना स्वरूप में स्थिति हुए इससे बचने की कोई सम्भावना नहीं है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

जीवन परिचय

यह क्षणभंगुर जीवन, सुनहरे प्रभात के साथ उदय होता है। अरुण सूर्य के साथ उभरता है। उसके प्रकाश के साथ खिलखिलाता है। उसकी गति के साथ प्रसरण करता है। उसकी सन्ध्या की छाया के सङ्ग लम्बा होता है और उसकी अस्तव्यस्तता के साथ निश्चेष्ट हो समाप्त होता है। इसमें कैसे सुस्वप्न हैं, कामनाएँ हैं, आशाएं हैं, उमङ्गें हैं, यह कितना रोचक है, कितना प्रेरक है; जो चाहता है कि इसके आलोक में सर्वदा जीवित रहें, किन्तु इन्हीं के अन्तः में कैसे-कैसे दुःस्वप्न हैं, असफलताएँ हैं, विषाद हैं, वे कितने कटु और घृणित हैं, जो चाहता है कि इनके आलोक से भाग कर कहीं चले जायें।

यह जीवन कैसा ? जिसे कामना मिली परन्तु इसकी सिद्धि न मिली। इस सिद्धि के लिये यह कितना आतुर है। इसके लिये यह कैसी-कैसी बाधाओं में से गुजरता है। कैसी-कैसी वेदना, विपदा, आघात-प्रघात सहन करता है। परन्तु सिद्धि का कहीं पता नहीं चलता। यदि भाग्यवश कहीं सिद्धि हाथ भी आयी तो वह कितनी क्षणस्थायिनी है, कितनी दुःखदायिनी है। वह प्राप्ति काल में आकुलता से अनुरञ्जित है, रक्षाकाल में चिन्ता से संयुक्त है और भोग काल में क्षीणता और शोक से ग्रस्त है। उसका आदि, मध्य और अन्त तीनों ही दुःख से भरे हैं।

यह जीवन ही दुरंगी है। इसकी सुन्दरता में कुरूपता बसी है। इसके सुख में दुःख रहता है। इसकी हँसी में रोना है। इसके लालित्य में भयानकता है। इसकी आसक्ति में अरुचि है। इसके योग में वियोग है। विकास में ह्रास है। यौवन में जरा है। यह सारा उमंग भरा जीवन मृत्यु से व्याप्त है। हजार रोकथाम करने पर भी इसका अनिष्ट अनिवार्य है। अन्त में चाह और वेदना के संघर्ष में तड़प-तड़प कर प्राणों की आहुति दे देता है।

इसका कारण पुरुषार्थ की कमी नहीं, बल्कि सद्लक्ष्य सद्ज्ञान और सदाचार की कमी है। इसका समस्त पुरुषार्थ भूलभ्रान्ति से ढका है। अज्ञान से आच्छादित है। मोह से ग्रस्त है। इसे पता नहीं कि जिस चीज की भावना बसी है वह क्या

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

है, कैसी है और कहाँ है। इसे पता नहीं कि उसे पाने का क्या साधन है, उसे सिद्ध करने का क्या मार्ग है। इसलिये यह जीवन उस ओर नहीं ले जा रहा है, जिस ओर यह जाना चाहता है। यह उस चीज को प्राप्ति में नहीं लगा है, जिसे यह प्राप्त करना चाहता है। यह केवल परम्परागत मार्ग का अनुयायी बना है। मोह की गाँठ को और भी उलझा देने वाले उन रूढ़िक पदार्थों का साधक बना है, जिन्हें सिद्ध करते-करते यह इतना अभ्यस्त हो गया है कि वे इसका जीवन ही बन गये हैं।

इस भूल, अज्ञान और मोह के कारण यद्यपि इस जीव ने अपने वास्तविक जीवन को भुला दिया है, उसे बंदी बनाकर अन्धकूप में डाल दिया है, परन्तु उसने इसे नहीं भुलाया। वह सदा इसके साथ है। वह घनाच्छादित सूर्य के समान अन्तर्गुहा में से ही फूट-फूट कर अपना आलोक देता रहता है। इसके सुस्वप्नों में बैठ कर इसकी आशाओं में आविष्ठ होकर, इसकी भावनाओं में भरकर अपना परिचय देता रहता है। वह वेदनामयी भाषा में पुकारता है। 'मैं यह जीवन नहीं हूँ। मैं इससे भिन्न हूँ। और हूँ। तत् हूँ। परे हूँ। दूर हूँ। अन्दर हूँ।' इसी प्रतीति से प्रेरित हुआ जीव बार-बार प्राणों की आहुति देता है। बार-बार मरता और जीता है। बार-बार पुतले को गढ़ता है, बार-बार इसे रक्त कान्तिवाले मादक रस से भरता है। बार-बार इसके द्वारों से लखाता है। परन्तु बार-बार इसी नाम रूप-कर्मात्मक जगत को अपने सामने पाता है, जिससे यह चिरपरिचित है।

फिर जानना होगा कि जीवन कैसा होना चाहिये। इसका निर्णय अन्तर्ज्ञान के द्वारा हो सकता है। इस ज्ञान के द्वारा जो अन्तर्गुहा का प्रकाशक है उस ज्ञान द्वारा जो अन्तर्लोक में बैठी हुई सत्ता को देख सकता है, उसकी वेदनामयी अनक्षरी भाषा को सुन सकता है। इस ज्ञान को उपभोग में लाने के लिये साधक को अपने समस्त विकल्पों से पृथक करना पड़ेगा। यह भूल, अज्ञान और मोह ही संसार-दुःख और मृत्यु के कारण हैं। यही जीवन के महान शत्रु हैं। इनकी विजय ही विजय है। जिसने इन्हें जीत लिया उसने दुःख-शोक को जीत लिया, जनम-मरण को जीत लिया, लोक-परलोक को जीत लिया। इस अज्ञान मोह के

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

संस्कारों को निर्मूल करने के लिये प्रमाद छोड़कर इन्द्रिय और मन बाहर से हटाकर अन्तर्मुख करना होगा। योगाभ्यास क्रिया योग के द्वारा अन्दर ही अन्दर देखना और जानना होगा। यह सत्यदर्शन, सत्यज्ञान, सत्यवृति का मार्ग है। यह वह सिद्धि मार्ग है जो गहरे-से-गहरे बैठे हुए संस्कारों को जीर्ण कर देता है, विध्वंस कर देता है। ढकी हुई आत्मशक्तियों को मुक्त कर देता है। जबतक यह चञ्चल मन स्थिर नहीं होता तब तक संस्कारों को निर्मूल नहीं किया जा सकता।

इसके लिये गुरु की शरण में जाना होगा। जो कृपा पूर्वक दर्शन, स्पर्शन या शब्द के द्वारा शिष्य के देह में सत्यज्ञान और सत्यवृति का आवेश करा सकते हैं, वे ही गुरु हैं। योग्य शिष्य का उद्धार करना और अयोग्य को योग्य बनाकर उसे तार देना यही गुरु का कार्य्य होता है। भगवान ही जीव के उद्धार कर्त्ता हैं। जीव को माया पंक से उठाकर परम पद में स्थापित करने का सामर्थ्य और किसी में नहीं है। इसलिये उन्हीं को सर्वत्र गुरु रूप में वर्णन किया जाता है।

जब तक मल की निवृत्ति नहीं होगी तब तक पशुत्व दूर नहीं होगा और शिवत्व की अभिव्यक्ति नहीं होगी। गुरु-दीक्षा ही मल को छुड़ाती है और फिर ऊपर की ओर सत्यलोक में भी ले जाती है। जिस प्रकार कुआं खोदने में लगा हुआ मनुष्य पानी निकाल लेता है उसी प्रकार गुरु की सेवा में लगा हुआ श्रद्धालु गुरु के हृदय में निहित सद्विद्या को प्राप्त कर लेता है। वर्तमान समय में दीक्षा एक प्रथा मात्र रह गयी है। न शिष्य में साधना की ओर प्रवृत्ति है और न गुरु में साधना की शक्ति। फिर दीक्षा का उज्ज्वल रहस्य लोगों की विषयोन्मुख बुद्धि में किस प्रकार आ सकता है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि अब कोई योग्य सद्गुरु हैं ही नहीं। जो अधिकारी पुरुष उनकी खोज करता है, उसे वे मिलते हैं और वैसी ही दीक्षा सम्पन्न होती है जैसी की प्राचीन समय में होती थी। हाँ, जो लोग इतना परिश्रम नहीं करना चाहते, उनके लिये साधना की अपेक्षा भजन की प्रणाली अधिक सुगम है। वे आर्त भाव से भगवान से प्रार्थना करते रहें, श्रद्धा और प्रेम से उनका नाम लेते रहें, जिस संत के प्रति उनका विश्वास हो उनका सङ्ग और आज्ञा पालन करते रहें। एक न एक दिन

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

उनका मार्ग भी तै हो ही जायगा। यदि आवश्यकता होगी उनका अधिकार होगा तो एक न एक दिन उन्हें सद्गुरु और दीक्षा की प्राप्ति होगी। इन उपर्युक्त बाह्य साधनाओं को करते रहने से अन्तःकरण की शुद्धि होगी; मनमें प्रसन्नता, चित्त में एकाग्रता योग-साधना में योग्यता प्राप्त होगी।

साधना

साधना किसे कहते हैं? 'साधना' का अर्थ है प्रयत्न करना, उद्योग करना, लगना। साधन का अर्थ सिद्धि भी है। भगवान के मार्ग में चलने के लिये जो भी अनुष्ठान किया जाता है जो भी व्रत लिया जाता है, वह सभी 'साधना' है और जो कुछ भी इस मार्ग में अवरोधक है, वह है साधना में विघ्न।

श्रीभगवान् के निकट पहुँचने के लिये साधन की आठ पैड़ियाँ बतलायी गयी हैं। ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से ऊँची हैं। अधिकारी भेद से सद्गुरु योग्य शिष्य को इस साधन विद्या का दान किया करते हैं। इन साधनों की आठ पैड़ियाँ ये हैं—यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार बाह्य साधन के अङ्ग हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये चार आन्तरिक साधना हैं। इनके द्वारा मनुष्य भगवान के निकट पहुँच जाता है। इसमें ध्यान आभ्यन्तर साधना का प्राण है। ध्यान का सरल अर्थ यही है कि समस्त बाह्य वृत्तियों को अर्न्तमुख कर हृदयात्मा पुरुष में लीन कर देना।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों को यम कहते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर में शरणागति ये पाँच नियम हैं।

जिस आसन पर साधक अपने साधन क्रियाओं के लिये सुख पूर्वक बैठ सके उसी को आसन कहते हैं। श्वास-प्रश्वास की गति को बन्द करना प्राणायाम कहलाता है। अपनी इन्द्रियों का विषयों के सङ्ग से रहित होकर चित्त स्वरूपानुसार हो जाना प्रत्याहार कहा गया है। चित्त को किसी एक स्थान में पाँच घड़ी पर्यन्त स्थित करने को धारणा कहते हैं। धारणा में चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा है। पूर्वोक्त ध्यान ही समाधि हो जाता है। ध्येय स्वरूप मात्र का ही निरन्तर भान होना समाधि है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दूसरी तरह से समझें—वहिरिन्द्रियों पर प्रभाव रखने को 'यम' कहते हैं। अन्तरिन्द्रियों पर प्रभाव रखने को 'नियम' कहते हैं। योग साधना के लायक शरीर बनाने को 'आसन' कहते हैं। प्राण और अपान वायु पर प्रभाव डालकर उनको योग साधनोपयोगी बनाने को 'प्राणायाम' कहते हैं। मन को बाहर से खींचकर भीतर की ओर लाने को 'प्रत्याहार' कहते हैं। भीतर में मन को ठहरा रखने को "धारणा" कहते हैं। इष्ट रूपी ध्येय में मन के लगा रखने को 'ध्यान' कहते हैं। और इष्ट में मन को लीन करके अपने को भूल जाने को 'समाधि' कहते हैं। यही 'अष्टाङ्ग योग' का सार है। इन आठों का बहुत कुछ विस्तार है। उन विस्तारों में से मंत्र, हट, लय और राज—इन चार श्रेणी के साधनों में इन आठों अङ्गों में से किसी में किसी अङ्ग पर अधिक ध्यान दिया है और किसी-किसी साधन में किसी-किसी दूसरे अङ्ग पर विशेष ध्यान दिया है। शास्त्रों में कहा गया है कि महर्षि मार्कण्डे, भरद्वाज, मरीचि, जैमिनि पाराशर भृगु और विश्वामित्र आदि की कृपा से इस कल्प में हठयोग का विस्तार हुआ है।

अजपा जाप साधना

आध्यात्मिक कर्मों में जप का स्थान बहुत ऊँचा है। यह अत्यन्त सरल साधना है। माता के गर्भ से भूमि पर आने के समय से लेकर प्रयाण करने तक सारे जीवन में जो स्वाभाविक श्वास की क्रिया चलती है यही अजपा साधन है। यह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति सभी समयों में समान रूप से चलती रहती है। मनुष्य का सारा जीवन श्वास-प्रश्वास मय हैं। मनुष्य आत्म-विस्मृत अवस्था में श्वास-प्रश्वास के अधीन रहता है एवं निरंतर काल की प्रेरणा से इड़ा और पिङ्गला नामक बाँये और दाँये मार्ग से संचरण करता है। हम् ध्वनि करता हुआ जो श्वास बाहर निकलता है उसका नाम प्रश्वास एवं सः ध्वनि करता हुआ जो भीतर जाता है उसका नाम निःश्वास है। 'हं कारेण वहियाति सः कारेण विशेत्पुनः'। जीव निरंतर श्वास-प्रश्वास के बहाने इस मन्त्र (हंस) का जाप करता है किन्तु अन्य जीवों से मनुष्य से भेद यह है कि मनुष्य अपने पौरुष द्वारा ऐसी सामर्थ्य अर्जित कर सकता है, जिससे श्वास-प्रश्वास की इस स्वाभाविक

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

गति में विपर्यय हो सके। अर्थात् मनुष्य साधना के बल पर हंस गति को सोऽहम् गति में परिवर्तित कर सकता है। तब आत्म ज्ञान का पथ खुल जाता है एवं इड़ा और पिङ्गला में संचार करने वाले वायु की वक्र गति सुषुम्ना के सरल गति के रूप में बदल जाती है। सुषुम्ना ब्रह्म मार्ग है। वायु इड़ा और पिङ्गला के मार्ग से हट कर जितना ही सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है, उतना ही विकल्प का शमन होता है। निर्विकल्प आत्मज्ञान का बन्द मार्ग धीरे-धीरे खुलने लगता है। सुषुम्ना में प्रवेश किये बिना वायु और मन की उर्ध्वगति नहीं हो सकती एवं उर्ध्वगति के बिना विकार का त्याग कर चित्त साम्य भाव में नहीं पहुँच सकता। इसी उर्ध्वगति से कुम्भक सिद्ध होती है। प्राणों की बाह्य गति की निवृत्ति इस साधन का उद्देश्य है प्राणों की बाह्य गति में न्यूनता होते ही अलौकिक शक्तियों का विकाश होता है। प्राणों में शान्ति आना आरम्भ होने पर चित्त में निष्कामता प्रकट होती है। निष्कामता की अभिव्यक्ति के बाद आनन्द की अभिव्यक्ति का होना स्वाभाविक है, गीता में भगवान् ने कहा है :—'अशान्तस्य कुतः सुखम्' इसी से निर्वाण प्राप्ति भी हस्तगत होती है। प्रणों की बाह्य गति की निवृत्ति इस जाप का उद्देश्य है। इस अजपा के रहस्य और प्रक्रिया के सम्बन्ध में महा-पुरुषों ने गुरु परम्परा से प्राप्त पद्धति का अनुसरण किया है।

इस साधना में बड़ा भारी काम यह है कि साधक कुछ न करे, केवल अपने श्वास-प्रश्वास की गति का निरीक्षण किया करे। इसमें रहस्य यह है कि हम लोग स्वाभाविक नियमानुसार श्वास ले नहीं पाते; मानसिक उद्वेगों के कारण उसकी स्वाभाविक गति में बड़ी बाधा पड़ती है, कहीं अस्वाभाविक रीति से उसकी गति तीव्र हो जाती है, तो कहीं शरीर के किसी भाग में रुक जाती है। यदि स्वाभाविक रीति से श्वास चलने पावे, तो अपने आप ही प्राण की गति रुक कर प्राणायाम हो जाय और समाधि की प्राप्ति हो।

इसके स्वाभाविक रीति से चलने देने का उपाय यही है कि मन को उसके साथ कर दे। उसकी गति में किसी प्रकार का विक्षेप न करे, केवल देखता रहे कि वह किस रास्ते से भीतर आता है और कहाँ तक जाता है तथा फिर कैसे लौट कर किस रास्ते से बाहर निकलता है और कहाँ तक बाहर जाता है एवं

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

फिर वहाँ से कैसे खींचकर भीतर जाता है। अर्थात् साक्षी होकर प्राण वायु के खेल देखे। देखने के लिये भी श्वास-प्रश्वास की गति न घटावे, न बढ़ावे, यदि वह अपने आप ही घटे या बढ़े तो उसे रोके भी नहीं। बराबर इस बात का प्रयत्न रक्खे कि मन श्वास-प्रश्वास की गति का साथ छोड़कर हटने न पावे। यदि कोई बात मन में उठे या कोई काल्पनिक दृश्य सामने आ जावे तो उसे हटाने की चेष्टा भी न करे, ध्यान श्वास की गति पर ही बनाये रक्खे यदि मन वहाँ से हट जाय तो फिर ले जाकर वहीं लगा दे।

श्वास के बाहर आने के समय वह ध्यान करे कि वह हं उच्चारण कर रहा है और भीतर जाने के समय यह चिन्तन करे कि वह सः उच्चारण कर रहा है। गति देखने का प्रयत्न ही इस साधना का मूल है। पहले तो रास्ते का पता ही नहीं चलता कि वह किधर से होकर भीतर जाता है और किस रास्ते से बाहर निकलता है। फिर भी घबड़ा कर क्रिया न छोड़े देखने का प्रयत्न बराबर करता ही रहे।

दस-पाँच दिनों में उसे ऐसे रास्ते से आता-जाता मालूम होगा जो कि सर्वथा असम्भव है, पर इसमें भी घबड़ाने की बात नहीं है, उन असम्भव रास्तों से चलते हुए को ही देखता रहे। कभी श्वास का वेग बढ़ जाय तो उसे रोकने का भी प्रयत्न न करे। धीरे-धीरे उसे ठीक रास्ते से चलता हुआ मालूम पड़ने लगेगा, पर इस बात से भी उसे प्रयोजन नहीं, उसे केवल गति निरीक्षण से प्रयोजन है।

आध घण्टे के अभ्यास से साधना आरम्भ करे। जब एक घण्टा का अभ्यास हो जाय, तो एक घण्टा तक बैठकर अभ्यास करने के बाद शवासन से लेट जाय और अभ्यास करता रहे। एक घंटे तक तो उसके सामने मनोराज्य के काल्पनिक दृश्य आते जायेंगे उसके बाद ऐसे दृश्यों का उठना बन्द हो जाएगा। तदनन्तर क्या होता है, साधक स्वयं देखेगा कि क्या होता है। पर जो कुछ भी दिखायी पड़े या अनुभव हो। उस पर ध्यान न देकर अपना काम करता जाय। इस अभ्यास में यदि हाथ-पैर एकाएक इधर-से-उधर गिर जाय, तो फिर ठीक कर ले। इस प्रकार विक्षेप से कोई हानि नहीं होगी। किसी अवस्था

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

में भी न घबराये और समझे कि भगवान उसके साथ है, केवल अभ्यास करता चला जावे, और वह यह कि श्वास की गति देखने में फरक न पड़ने पावे। साधक यदि खेचरी मुद्रा जानता हो तो इस साधन में बड़ी सहायता मिलती है। इस साधन में कभी-कभी निद्रा भी लग जाती है, और नये साधक को यह निश्चय करना कठिन है कि वह निद्रा है या समाधि।

नाद साधना

जीव श्वास-प्रश्वास के अधीन होकर निरन्तर इड़ा-पिङ्गला के मार्ग से चल रहा है, उसका सुषुम्ना मार्ग प्रायः बन्द है। इसलिये उसकी इन्द्रियाँ और चित्त बहिर्मुख है, जगत के अन्तस्थल में आकाश मण्डल में जो अखण्ड नाद निरन्तर ध्वनित हो रहा है उसे वह चित्त और प्राणों की विक्षिपता के कारण सुन नहीं पाता। परन्तु जिस समय गुरु कृपा से तथा क्रिया विशेष के द्वारा सुषुम्ना मार्ग उन्मुक्त होता है, उस समय प्राण स्थिर और सूक्ष्म अवस्था प्राप्त कर उसमें प्रविष्ट होता है और उस शून्य पथ में मन अनाहत ध्वनि का श्रवण करता है। निरन्तर ध्वनि का अनुसरण करते-करते मन क्रमशः निर्मल और शान्त अवस्था को प्राप्त करता है। मन जब पूर्णरूपेण स्थिर हो जाता है तब फिर नाद ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। उस समय चिदात्मक आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होकर वाह्य प्रकृति के स्पर्श से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। मूलाधार से नाद का उठना आरम्भ होता और सहस्रार में जाकर लीन हो जाता है। साधक का मन इस नाद के साथ युक्त होने पर अनायास परब्रह्म पद तक उठकर चिन्मय आकार धारण करता है और चैतन्य के अन्दर अपने आपको मिला देता है। यह नाद साधना अन्तर्मुखी साधना है बिना सद्गुरु के अप्राप्त है। यह सन्त समाज का साधना का बड़ा भारी भाग है। कबीर, रैदास, नानक और राधास्वामी केवल अनहद योग का प्रचार किया था। उक्त आचार्यों ने अपने-अपने अलग-अलग मत वा सम्प्रदाय कायम किये और उनको अनहद नाद का साधन बतलाया। जिसमें एक मत का साधना ये हैं—नाद का अभ्यास :—प्रातः काल शौचादि से छुट्टी पाकर किसी एकान्त स्थान पर चले जाओ। शव आसन लगाओ यानी सीधे लेट जाओ। हाथ के दोनों अँगूठों से दोनों

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

कान बन्द करो। अपने ही घट में शब्द सुनायी पड़ना शुरू हो जायगा। अपनी दायीं ओर के शब्दों को सुनना चाहिये। बायीं ओर के शब्द माया के हैं और त्याज्य हैं। ये नाद (शब्द) दस हैं। विराट् में दस मण्डल है। प्रत्येक मण्डल अपना अपना शब्द रखता है।

मण्डल	शब्द	उसकी उपमा
१. संहारक देव का लोक	"	पायजेब की झंकार सी
२. पालक देव लोक	"	समुद्र की लहर-सी
३. सृजक देव का लोक	"	मृदङ्ग-सी
४. सहस्रदल कमल	"	शङ्ख-सी
५. आनन्द मण्डल	"	तुरही-सी
६. चिदानन्द मण्डल	"	मुरली-सी
७. सच्चिदानन्द मण्डल	"	वीन-सी
८. अखण्ड अर्द्धमात्रा	"	सिंह गर्जन-सी
९. अगम मण्डल	"	नफीरी-सी
१०. अलख मण्डल	"	बुलबुल-सी

अगर मरते समय किसी नाद को पकड़ लिया जाय तो मृतक की आत्मा उसी मण्डल में जा पहुँचेगी जहाँ से वह शब्द आ रहा है। किन्तु इस साधना प्रणाली द्वारा पाप पुण्य के चक्र से सुरक्षित नहीं है। जब उसका पुण्य समाप्त होगा पुनः पृथ्वी पर पाप भोग के लिये अवतरण होगा।

मुद्रा साधना

मुद्रा में योग साधना का आसन, प्राणायाम धारणा ध्यान आदि सभी क्रियाओं का सम्मिश्रण हैं। मुद्रा की सहायता से जीव सर्वशक्तिमान होकर शिव की पदवी प्राप्त कर सकता है।

मैं जिन मुद्राओं का वर्णन लिख रहा हूँ। इस मुद्रा साधन को किसी अनुभवी और पारदर्शी गुरु से ही प्राप्त करना उचित है। (शिवसंहिता के मत से) मुद्रा

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

१० प्रकार हैं—महामुद्रा, खेचरी, विपरीत करणी मुद्रा, योनिमुद्रा, साम्भवीमुद्रा, मूलबन्ध, उड्डीयान, जलन्धर, शक्ति चालिनी और महावेध।

इन मुद्राओं का एक मात्र आधार कुल कुण्डलिनी शक्ति है। इस शक्ति के जाग्रत होने पर षटचक्र का भेद हो जाता है और सुषुम्ना के मार्ग से प्राण वायु का सुख पूर्वक आना-जाना होने लगता है। ये मुद्राएँ सिद्धों को बड़ी प्रिय और मरुद्गणों के लिये दुर्लभ हैं। रत्नों की पिटारी की तरह इनको छिपाकर रखना चाहिये।

महामुद्रा :—गुरु के उपदेशानुसार बायें टखने से योनि-मण्डल (गुदा और उपस्थ के बीच का स्थान) को दबाकर और दाहिने पैर को फैलाकर दोनों हाथों से पकड़ ले और शरीर के नवों द्वारों को संयत करके छाती के ऊपरी भाग पर ठुड्डी को लगा दे और चित्त को चैतन्य मार्ग में अर्पित करके कुम्भक के द्वारा वायु को धारण करे। इस मुद्रा का पहले बायें अंग में अभ्यास करके फिर दाहिने में करें और अभ्यास करते समय मन को रोककर उसी नियम से प्राणायाम करता रहे।

इस मुद्रा से देह की सारी नाड़ियाँ चलने लगती हैं। जीवनी-शक्ति स्वरूप शुक्र जीवन को आकर्षण करके स्तम्भित हो जाता है। बुढ़ापा और मृत्यु का आक्रमण नहीं हो पाता। मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है और मनुष्य जितेन्द्रिय होकर दुस्तर भवसागर से पार हो जाता है। यह साधना बहुत गुप्त रूप से करना चाहिये और जिस किसी को इसे नहीं बतलाना चाहिये।

खेचरी मुद्रा :—जीभ के निचले हिस्से में जिह्वा मूल के साथ और जीभ के साथ जो नाड़ी जुड़ी है, उसे योग कौशल के द्वारा बढ़ाकर जीभ के उस निचले भाग पर जीभ के अग्र भाग को सदा चलाते रहना चाहिये इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करने से जीभ लम्बी हो जाती है। जीभ को इतनी लम्बी कर लेना चाहिये कि जिसमें उसके द्वारा दोनों भौंहों के बीच में सहज ही स्पर्श किया जा सके। जीभ को क्रम-क्रम से तालु के बीच में ले जाना चाहिये। तालु के बीच में जो गढ़ा है, जिसे कपाल कुहर कहते हैं, उसमें जीभ को ओर उलटा कर घुसा देना चाहिये और दोनों भौहों के बीच में दृष्टि जमानी चाहिये। इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

विपरीत करणी मुद्रा :—नाभी के मूल में सूर्य नाड़ी है और तालु के मध्य में चन्द्र नाड़ी है। सहस्रार कमल से निकली हुई अमृतधारा का नाभिस्थित सूर्य नाड़ी पान किया करती है, इसीसे मनुष्य को मृत्यु के वश होना पड़ता है। यदि तालु के मूल में स्थित चन्द्रनाड़ी के द्वारा योगी उस सुधा धारा को पी सके तो उसे मृत्यु के वश नहीं होना पड़ता। अतएव योग कौशल के द्वारा सूर्य नाड़ी को ऊपर और चन्द्रनाड़ी को नीचे ले आना चाहिये। इसका उपाय है मस्तक को जमीन पर रखकर दोनों हाथ उसके नीचे दोनों ओर लगा दें और दोनों पैरों को सीधे ऊपर उठाकर कुम्भक करता रहे यही विपरीत करणी मुद्रा है।

योनि मुद्रा :—पहले सिद्धासन से बैठकर दोनों अँगूठों से दोनों कान, दोनों तर्जनी से दोनों आँखें, दोनों मध्यमा से दोनों नाकों के छेद और दोनों अनामिका से मुँह को बन्द कर देना चाहिये। काकी मुद्रा के द्वारा प्राण वायु को खींच कर अपान वायु के साथ मिला देना चाहिये। देह स्थित छहोंचक्रों के ध्यान करके 'हूँ' और 'हंस' इन दो मन्त्रों के द्वारा सोयी हुई कुण्डलिनी देवी को जगाना चाहिये और जीवात्मा के साथ युक्त कुण्डलिनी शक्ति को सहस्र दल-कमल पर ले जाकर ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि "मैं स्वयं शक्तिमय होकर शिव के साथ नाना प्रकार विहार कर रहा हूँ।" फिर दृढ़ चित्त से ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि 'शिव-शक्ति के संयोग से आनन्द स्वरूप होकर मैं ही ब्रह्म रूप में स्थित हूँ।' इसी का नाम योनिमुद्रा है। यह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है और अत्यन्त गोपनीय है। इस मुद्रा का एक बार साधन करने पर सिद्धि प्राप्त हो जाती है और साधक अनायास ही समाधिस्थ हो सकता है।

साम्भवी मुद्रा :—दोनों भौहों के बीच में दृष्टि को जमा कर संयत मन में ध्यान के द्वारा परमात्मा का दर्शन करना चाहिये। इसे साम्भवी मुद्रा कहते हैं। यह सभी तन्त्रों में गोपनीय है। वेद, पुराण आदि सर्वत्र प्रकाशित है, किन्तु यह मुद्रा कुलकामिनी की भाँति अत्यन्त गोपनीय है।

मूलबन्ध :—गुदा और लिङ्ग के प्रदेश में एड़ियों को दृढ़ लगाकर गुदा मार्ग का सङ्कोचन करे। इससे अपान वायु ऊपर को उठकर प्राण वायु के साथ संयोग करती है। इससे सुप्त कुण्डलिनी में संचार होने से सुषुम्ना में प्रवेश होता है।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

उड्डीयान बन्ध :—दोनों जंघों को मोड़कर पैरों के तलुओं को परस्पर बराबर मिलाकर बैठें। पेट के अन्दर नाभिचक्र के ऊपर नीचे के भाग को पीठ की ओर खींचे ताकि पेट पीठ की ओर लग जाय और प्राणायाम साधे। इससे नाभि के ऊपर और नीचे के भाग पर अधिक तनाव पड़ने से प्राण वायु का मार्ग सुषुम्ना की ओर होता है।

जालन्धर बन्ध :—कण्ठ को सिकोड़कर ठोड़ी को हृदय पर दृढ़तापूर्वक लगावे। इससे शरीरस्थ नाड़ियाँ कसती हैं जिससे इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों के स्तम्भित होने के कारण सुषुम्ना की ओर प्राण वायु का मार्ग होता है और ब्रह्मरंध्र से टपकने वाले अमृत का बन्धन होता है।

महावेध :—कुम्भक प्राणायाम जब उड्डीयान बन्ध करते समय किया जाता है उसे महावेध कहते हैं।

शक्ति चालिनी मुद्रा:—सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों को मूलाधार में जोर से दबावे, ठोड़ी हृदय में लगाकर जोर से श्वास-प्रश्वास करे ताकि पेट की अँतड़ियों के दबाव व ढीला होने का प्रभाव मणिपूर-चक्र पर पड़े और उसी के साथ गुदा संकोचन, खोलन करे। इससे मूलाधार की अपान वायु की टक्कर मणिपूर की प्राण वायु पर पड़ने से सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसका अभ्यास आहार-विहार को संयत कर ब्रह्मचर्य में स्थिर होकर करना चाहिये। (इनमें तीन बन्ध एक वेध तथा छः मुद्रायें हैं)

ये सभी मुद्राएँ योगियों के लिये सिद्धिदायिनी हैं। गुरुकृपा से जब सोयी हुई कुण्डलिनी-शक्ति जग जाती है; तब षट्चक्रों में स्थित कमलों का और ग्रन्थियों का भेद हो जाता है, इसलिये ब्रह्मरन्ध्र के मुख पर स्थित निद्रिता कुल कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिये मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये। किन्तु—ध्यान रहे उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण मुद्राओं बन्धों व वेध का किया गया है वह केवल जानकारी के लिये ही है। इन्हें केवल पूर्णतः अनुभवी सिद्धयोगी से उसके समक्ष सीखना व करना चाहिये अन्यथा अनिष्ट होने की सम्भावना होती है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

दान साधना

अपनी वस्तु में आसक्ति का परित्याग करके उसको परमार्थ में उत्सृष्ठ करना ही दान है। सबसे बढ़कर त्याग या दान है। जीव को सत्य पथ अर्थात् भगवान का मार्ग दिखला देता है इसलिये सर्वश्रेष्ठ दान है। जो अपने इन्द्रिय दमन में अशक्त है, वह अपनी समस्त शक्ति और अर्थ को अपनी इन्द्रिय तृप्ति रूपी इन्धन रूप में व्यवहार करता है। वह भला दूसरे के दुःख, अभाव की बात कैसे सोचेगा ? इसलिये अजितेन्द्रिय आदमी कभी दान नहीं कर सकता।

जिसको खाना नहीं मिलता उसको अन्न दो, जो रोगी है उसकी सुश्रूषा करो, जो असमर्थ है उसकी सहायता करो, जो भीत है उसको अभय दान दो। भूखा आदमी चाहे चमार हो, डोम हो, चाण्डाल हो—उसके लिये अन्न ही पथ्य है। किन्तु अनादर करके या अहंकारपूर्वक दान करने का भी निषेध है।

सब भूतों में आत्म-दर्शन आर्यऋषियों का चरम लक्ष्य था। उन्होंने सारी व्यवस्था इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर की है। अन्नदान औषधिदान, सुश्रूषा या जीव-सेवा ये सभी महान कार्य हैं। परन्तु इसकी अपेक्षा भी एक महत्तर कर्त्तव्य है। अन्नदान के द्वारा आज भूखे की भूख शान्त हो जायगी परन्तु फिर भूख लगेगी तो उसकी निवृत्ति कैसे होगी ? जिस कर्म पाश में बद्ध होकर जीव नाना प्रकार की भूखों से उत्पीड़ित होकर दिन-रात जल रहा है, जो भूख इस पार्थिव अन्न से मिटने वाली नहीं है, मनुष्य की उस चिरकाल की भूख, प्यास, अशान्ति और उपद्रव को दूर करके जो उसको पूर्ण निरोग बना सके—दुःखी जीव को वैसा मार्ग दिखला देना, उसको उस मार्ग में परिचालित कर देना, उसके अनन्त-जीवन-व्यापी अभाव को मिटाने का रास्ता पकड़ा देना ही सर्वश्रेष्ठ दान है। वासना की अत्यन्त दारुण क्षुधा को निवृत्त करने का उपाय जो बतला देते हैं वही सर्वश्रेष्ठ दाता हैं।

ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ पात्र कहा गया है, क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्मविद्या का भण्डारी है। जो जगत के जीवों की भव-व्याधि की पीड़ा निवारण करने के

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

लिये अमोघ औषधि प्रदान करने में समर्थ हैं, परन्तु अपने भोजनाच्छादन के लिये उदासीन हैं, जो लोभ शून्य हैं, परहित-व्रत में जीवन समर्पित कर रखा है, ऐसे ब्राह्मण को ही शास्त्र ने दान का योग्यतम पात्र निर्दिष्ट किया है परन्तु खेद है कि आज इस देश में ऐसे ब्राह्मणों का अस्तित्व ढूंढ़े भी नहीं मिलता। वर्तमान युग के सन्ध्या-जप-विहीन, असंयमी, तपः शून्य, मूर्ख, कपटाचारी नाम मात्र के ब्राह्मणों को दान करने का शास्त्र निषेध करते हैं।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

योगिराज श्रीहरिना ं घ महाशय की

संक्षिप्त जीवनी

अनादि काल से ही अनेक मनीषियों ने जन्म ग्रहण कर इस भारत भूमि की आध्यात्मिक सम्पदा का परिचय देते हुए अलंकृत किया है। योगिराज श्री हरिनारायण पालधि महाशय ने भी इसी काशीपुरी के प्रसिद्ध महल्ला पातालेश्वर के एक श्रोत्रिय ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण किया था। उनके पितामह श्री रामनिधि पालधि और पिता श्रीसीताराम पालधि घन और प्रतिष्ठा में तत्कालीन उस महल्ले के निवासियों में प्रसिद्ध गिने जाते थे। श्रीसीताराम पालधि की पत्नी श्रीमती अभया सुन्दरी देवी ही श्रीहरिनारायण पालधि महाशय की गर्भधारिणी थीं। इनकी वंश परम्परा वैष्णव धर्मावलम्बी थी।

शैशव काल—

सुना जाता है कि तीन वर्ष की अवस्था में ही अपना शिशु सुलभ चापल्य परित्याग कर पद्मासन लगा एकान्त में बैठे रहा करते थे। जन्मान्तरीय संस्कार उनके जीवन को इसी ओर प्रवाहित कर ले जायगा—इसकी सूचना शिशु-जीवन में ही परिलक्षित हो पड़ी थी। चार वर्ष की उम्र से ही अपने आप कविता करना प्रारम्भ किया, तथा बालक समाज में "श्रीमीहरि" हरि बोल, ताली बजा-बजाकर कहा करते थे। भूमिष्ठावस्था में रोदन नहीं किया तथा खेचरी मुद्रा युक्त जन्म ग्रहण किया। इन्हें तीन भाई और दो बहने थीं।

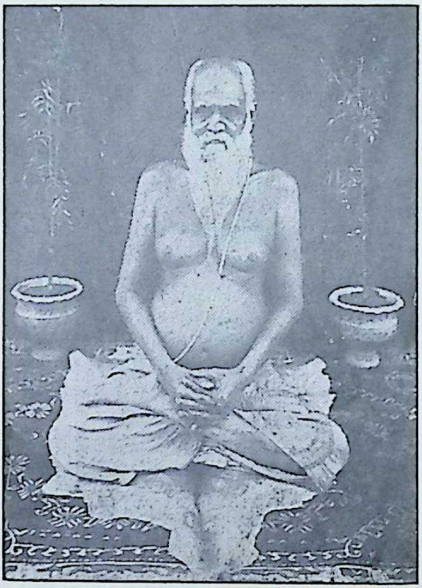
विद्यारम्भ—

उनके पिता श्रीसीताराम पालधि महाशय तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते हुए उन्हें अङ्गरेजी शिक्षा देने की व्यवस्था की। इसके बाद सम्भवतः सन् १८७१ में बंगाली टोला स्कूल में प्रवेश किया। इन्होंने कितने दिन और

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

योगिराज श्रीहरिनारायण पालधि महाशय



ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्
द्वान्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षीभूतम्
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

कहाँ तक अङ्गरेजी विद्या का अध्ययन किया इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता, फिर भी इसके यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि उन्होंने उच्च शिक्षा अवश्य प्राप्त की थी। संस्कृत, हिन्दी, अङ्गरेजी, बंगला और उर्दू के जानकार थे।

विवाह संस्कार—

सेनहाटी ग्राम, जिला जसहर निवासी पण्डित ईश्वर आशुतोष मुकर्जी की कनिष्ठा कन्या श्रीमती ज्ञानदा सुन्दरी देवी के साथ अङ्गरेजी सन् १८८०, फागुन मास शुक्ल पक्ष द्वितीया में उनका विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीमती ज्ञानदा सुन्दरी जीवन पर्यन्त शान्त और सुशील रहीं। वे स्वामी के पारिवारिक अशान्ति और अर्थ कष्ट के दिनों में भी अत्यन्त धैर्य से काम लेकर सब ओर संभाले रहती थीं। वे पूर्णतया सुगृहिणी थीं और सुव्यवस्था के परिणाम-स्वरूप पति के सामान्य उपार्जन पर भी अत्यन्त धैर्य से कार्य में लगी रहीं। हम लोगों ने उन्हें अत्यन्त वृद्धावस्था में भी आलस्यवश समय काटते नहीं देखा। ऐसी पुण्यवती नारी ने अपना सुदीर्घ जीवन धर्मपथ और गुरु श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के बताये योग-पथ साधन में लगकर प्रायः ९२ वर्ष की आयु में जीवन मुक्त अवस्था में रहते हुए काशी लाभ किया।

गुरु दर्शन और दीक्षा लाभ—

उनकी दीक्षा के सम्बन्ध में जो गुरु मुख से सुना था उसकी संक्षिप्त आलोचना करना आवश्यक है। उनको योगाभ्यास साधना करने की अत्यन्त रुचि थी। एक बार तैलङ्ग स्वामी के दर्शन के लिये उनके आश्रम पर गये, स्वामी जी उन्हें देखकर हँसे और अंगुरी से जमीन पर लिख कर कहा कि जिस काम के लिये तुम आये हो वह तुम्हें शीघ्र प्राप्त होगा किन्तु तुम्हें यहाँ आने की आवश्यकता नहीं। पुनः श्रीहरिनारायण पालधि महाशय के प्रिय मित्र दोकौड़ी महाशय ने अपने पिता श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय का परिचय देते हुए, उन्हें उनके पास ले जाने को आश्वासन दिया। फिर कुछ ही समय बाद श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के द्वारा अङ्गरेजी सन् १८८५ में जिस समय उनका उम्र २१ वर्ष को थी दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। ये उद्यमशील और उद्योगी पुरुष थे।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इस तरह की दृढ़ता के कारण ही भविष्य कालीन जीवन में योगाभ्यास का घोर परिश्रम कर २३ वर्ष बाद सन् १९०८ में गुरुकृपा से हठात् सिद्धि प्राप्त हुई। २२ वर्षों तक जनसाधारण में योगधर्म का प्रचार कर जिज्ञासु वर्ग को योगपथ में प्रवेश कराया। उनके निकट दीक्षा प्राप्त करने के लिये नाना जाति के लोग इकट्ठे होने लगे। ब्राह्मण-क्षत्रिय से लेकर अस्पृश्य हिन्दू, मुसलमान, अङ्गरेज तथा राजा से लेकर भिखारी तक कोई भी उनकी कृपा से वञ्चित नहीं रहा। आपके १०२५ शिष्य थे। आपने शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों की आध्यात्मिक व्याख्या की जिनमें सद्गुरु-वाणी नामक ग्रन्थ विख्यात है। वह सर्वसाधारण के बोधगम्य नहीं है फिर भी साधकों के लिये तो अत्यन्त प्रयोजनीय है। ऐसी साधन रहस्य पूर्ण व्याख्या अभी तक किसी ने भी की है—ऐसा जान नहीं पड़ता।

महाप्रयाण—

इस प्रकार प्रायः १८ वर्षों तक जनसाधारण में क्रियायोग का प्रचार कर जिज्ञासु वर्ग का सन्देह दूर करते हुए ५ जुलाई सन् १९४५, एकादशी के रात्रि १ बजे अपने देव शरीर का त्याग किया। उनके भतीजे श्रीसुरेशचन्द पालधि तथा भक्त वृन्द उनके पवित्र शरीर को फूल-माला चन्दनादि से विभूषित कर मणिकर्णिका घाट पर ले गये। जल-प्रवाह के पूर्व जब उन्हें स्नान कराया जा रहा था, दर्शकों ने देखा कि जैसे वे जीवित हों—यह कुछ कम विस्मयजनक दृश्य न था। गीता में योगी और भक्त के जिन समस्त लक्षणों का वर्णन है वे सभी लक्षण मानो उनके आदर्श रूप से प्रस्फुटित हुए थे। उनके वार्त्तालाप, वेश-भूषा अथवा आचार-व्यवहार में लेश मात्र का भी आडम्बर नहीं था। वे स्त्री-पुत्र लेकर परिवार में रहते हुए भी संन्यासी थे। फिर भी जल में कमल-पत्र की तरह वे पूर्णतया निर्लिप्त थे।

आज उनके देव शरीर का अवसान हुए प्रायः २२ वर्ष व्यतीत हो रहा है किन्तु अभी भी उनकी स्मृति-पूजा काशी के देवनाथपुरा महल्ले में उनकी समाधि और उनका स्मृति-मन्दिर प्रतिष्ठित है जहाँ उनके भक्तगण नित्य पूजा कर उनकी पवित्र स्मृति की रक्षा करते आ रहे हैं।

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

प्राक्कथन

श्रद्धास्पद योगिश्रेष्ठ स्व० हरिनारायण पालधि महाशय ने निम्नलिखित देहतत्त्व का संकलन किया था। उनकी काशीप्राप्ति के पश्चात् उनके स्वहस्तलिखित कागजों में इसकी पांडुलिपि प्राप्त हुई थी। मनुष्य के शरीर में योग-साधना के उपयोगी जो बहुत से केन्द्र हैं उनमें कुछ योग-शास्त्र में चक्रनाम से प्रसिद्ध हैं। उन चक्रों में कुछ गुप्त और कुछ प्रगट ऐसे दोनों प्रकार के चक्र हैं। परन्तु शरीर में चक्र के अतिरिक्त और भी बहुत से केन्द्र हैं। स्वच्छन्द तन्त्र, शिव-संहिता, योगिनी-हृदय, षट्चक्र-निरूपण आदि विविध ग्रन्थों में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। योग साधना में प्रवृत्त योगी मात्र ही ऊर्ध्वगति के समय अपने-अपने साधन-प्रस्थान के निर्दिष्ट क्रम के अनुसार उन सब केन्द्रों के साथ परिचित होते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में उन सब केन्द्रों का नाम, स्थान-निर्देश तथा षट्चक्र-वर्णन आदि दिये गये हैं। आशा है—योगाभ्यासी साधक इस पुस्तिका से उपकृत होंगे।

श्रीगोपीनाथ कविराज

देह तत्त्व

सब जीवों के शरीर में इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियां मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक फैली हुई हैं। इड़ा नाड़ी चन्द्र-स्वरूपा है। वह मनुष्य की बाईं ओर है। पिङ्गला नाड़ी सूर्य-रूपा है, वह मनुष्य के दक्षिण भाग में स्थित है। बीच में अग्नि-स्वरूपा सुषुम्ना नाडी रहती है। इस सुषुम्ना नाड़ी में ही षट्चक्र की स्थिति है। मूलाधार पद्म को मुक्त त्रिवेणी कहते हैं, क्योंकि इड़ा नाड़ी गङ्गा, पिङ्गला नाड़ी यमुना और सुषुम्ना नाड़ी सरस्वती कही जाती है। मूलाधार में ये तीनों नाड़ियां सम्मिलित रहती हैं, तदुपरान्त अलग-अलग

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वह कर आज्ञाचक्र में फिर मिलती हैं। इसीलिए आज्ञा-चक्र मुक्त त्रिवेणी कहा जाता है। बाईं ओर इड़ा नाड़ी है; जो कुछ शुक्लवर्ण वाली, चन्द्र-स्वरूपा और अमृतमयी है। दाहिनी ओर पिङ्गला नाड़ी है, वह रक्त वर्ण वाली, सूर्य-स्वरूपा और विष से सराबोर है। बीच में सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में वज्रिणी नाड़ी है। उसके भीतर अमृत बहाने वाली चित्रा नाड़ी विराजमान है। इसी को ब्रह्मनाड़ी कहते हैं। चक्र में स्थित सब कमल इसी नाड़ी में गुँथे हुए हैं। सभी चक्र इस नाड़ी के ग्रन्थि रूप हैं। इस (ब्रह्मनाड़ी) की स्थूलता एक बाल के हजारवें हिस्से के बराबर है। सब कमल भी वैसे ही सूक्ष्म हैं, किन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण उनका चिन्तन नहीं हो सकता। इसलिए उन्हें चार अङ्गुल का मान कर उनका चिन्तन किया जाता है। यद्यपि सभी कमल अधोमुख और मुँदे हुए (मुकुलित) हैं तथापि ध्यान के समय कुण्डलिनी के चैतन्य होने पर वे सब ऊर्ध्वमुख और विकसित (खिले हुए) हो जाते हैं। इसलिए योगी लोग सब कमलों का ऊर्ध्वमुख के रूप में ध्यान करते हैं। अधोमुख कमलों के नीचे ऊर्ध्वमुख एक-एक कमल है। मूलाधार कमल के नीचे बिजली की सी दीप्तिवाला अनन्तशक्तियों से युक्त लाल रंग का एक सहस्रदल कमल है।

मलद्वार और मूत्रद्वार के बीच में मूलाधार कमल है। यह कमल चतुर्दल—चार पाँखुरीवाला—और लाल रंग का है। इन चार पत्तों में क्रमशः वायुपत्र में योगानन्द, परमानन्द, सहजानन्द और वीरानन्द विद्यमान रहते हैं। इस कमल के मध्यभाग में पल्लव का सा रंगवाला स्वयंभू लिङ्ग शोभा पाता है। बिजली के सदृश दीप्तिवाली कमलनाल की तांत सी सूक्ष्म (महीन) कुलकुण्डलिनी साढ़े तीन फेरों से स्वयम्भू लिङ्ग को लपेट कर ब्रह्मद्वार को रोक कर सोयी हुई है। कमल और स्वयम्भू लिङ्ग के अधोमुख रहने के कारण वह ब्रह्मरन्ध्र भी अधोमुख रहता है। रक्तवर्ण और त्रिकोण अग्नि का मंडल इस स्वयंभू लिङ्ग को चारों ओर से परिवेष्टित कर दीवार के समान स्थित है। उस त्रिकोण में रक्तवर्ण कन्दर्प-वायु विद्यमान है। उसके चारों ओर अष्टवज्र-विभूषित चतुष्कोण, पीतवर्ण पृथिवीमण्डल है। उसमें 'लं' बीज और हस्तिवाहनवाली पृथिवी विद्यमान है। उस पृथिवीमण्डल पर प्रथम शिवस्वरूप ब्रह्मा और सावित्री शोभायमान हैं।

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

उसमें चतुर्भुज और रक्तवर्ण ब्रह्मा तथा सावित्री विराजमान रहते हैं। उसमें चतुर्भुज रक्तवर्ण डाकिनी शक्ति भी रहती है। इस मूलाधार से इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ियाँ बिछुड़ कर गई हैं। मूलाधार के ऊपर नाभि के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र है। वह षड्दल है। कमल की कर्णिका लाल रंग की और पत्र (दल) बिजली ऐसे चमकीले हैं। बँ, भँ, मँ, यँ, वँ, लँ—ये छः वर्ण षड्दल में हैं। स्नेह, अविश्वास, अवज्ञा, मूर्च्छा, सर्वनाश, क्रूरता ये छः वृत्तियाँ भी छः दलों में हैं। उसकी कर्णिका के मध्यवर्त्ती त्रिकोणमंडल में महाविष्णु, महालक्ष्मी और सरस्वती देवता हैं। विष्णु नीलवर्ण और चतुर्भुज हैं। उनके सामने नीलवर्ण चतुर्भुज राकिनीशक्ति, अर्द्धचन्द्राकार सफेद वरुण मंडल, सफेद मगर-वाहन, वरुण और 'वँ' वरुण बीज विद्यमान हैं।

इसके ऊपर नाभिमण्डल में मणिपूर नाम का मेघ के से रङ्ग का दशदल कमल है। डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दस वर्ण क्रमशः दस दलों में हैं। ये वर्ण पीले रङ्ग के हैं। इसकी लज्जा, पिशुनता, ईर्ष्या, तृष्णा, सुषुप्ति, विवाद, कषाय, मोह, घृणा, भय ये दस वृत्तियाँ भी दस दलों में हैं। इसकी कर्णिका के त्रिकोण के मध्य रं बीज है, तीन स्वस्तिकों से विभूषित लाल रङ्ग के त्रिकोण में अग्नि-मण्डल एवं मेषवाहन रक्तवर्ण चतुर्भुज अग्नि विद्यमान है। अग्नि के सामने रुद्र और उनकी शक्ति भद्रकाली शोभा की अभिवृद्धि करती हैं। ये रुद्र 'वर अभय' मुद्रा से युक्त, दो भुजाओं से विभूषित, सिन्दूर के सदृश वर्णवाले, त्रिलोचन और भस्मालङ्कृत हैं। उनके निकट तप्त सुवर्ण सदृश वर्ण युक्त, पीले आभूषणों से विभूषित, पीतवस्त्रा, चतुर्भुजा, मदनमत्तचित्ता लाकिनी शक्ति शोभा पाती हैं। इस पद्म के ऊपर भानुभवन और सूर्यमण्डल है। चन्द्रमण्डल से जो अमृत प्रवाह बहता है वह यहाँ लुप्त हो जाता है। इस मणिपूर के ऊपर हृदय में इष्टदेव का चिन्तन-स्थान अष्टदल कमल है। उसके ऊपर अनाहत चक्र नाम का लाल रंग का द्वादशदल कमल है। कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये सिन्दूर-वर्ण बारह अक्षर उस कमल के बारह दलों पर रहते हैं। इसके अतिरिक्त आशा, चिन्ता, चेष्टा, ममता, दम्भ, विकलता, विवेक, अहङ्कार, लोलता, कपटता, वितर्क, अनुताप ये बारह वृत्तियाँ क्रमशः बारह दलों में रहती हैं। इस कमल की

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

कर्णिका में बिजली के समान चमकदार जो त्रिकोणमण्डल है उसे त्रिकोण
कहते हैं। इस त्रिकोणमण्डल के बीच में लाल रंग का बाणलिङ्ग है। उ
निकट नारायण और उनकी शक्ति भुवनेश्वरी रहती हैं। नारायण का
तपाये हुए सोने के सदृश है। उनकी दो भुजाएँ हैं और वे वर और अ
मुद्रा धारण किये रहते हैं। उनके निकट काकिनी शक्ति है। उनका
बिजली के समान है। चार हाथों में पाश, पानपात्र, वर और अभय विद्य
हैं। वे त्रिनेत्रा सुधार्द्रहृदया, मत्ता और अस्थिमाल्य-विभूषिता हैं।
जगह कालरात्रि आदि बहुत सी शक्तियाँ हैं। इस चक्र में 'यैं' यह वायुबी
धूम्रवर्ण षट्कोणमण्डल, गोलाकार वायुमण्डल, कृष्णसारवाहन, धूम्रवर्ण चतु
पवन शोभायमान है। इसी चक्र के मध्य में निर्वात दीपकलिकाकार (नि
स्थान में रक्खे हुए दीपक की लो के समान आकार वाले) जीवात्मा रहते
उनके ऊपर कण्ठमूल में विशुद्ध चक्र और भारती स्थान नाम का धूम्र
षोडशदल कमल है। उसके हर एक दल में अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं
ऌं एं ऐं ओं औं अं अः इन सोलह वर्णों में से एक-एक वर्ण है। ये सब
लाल हैं। इनके अतिरिक्त निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धै
और पञ्चम सात दलों में ये सात स्वर हैं और अवशिष्ट कर्णिका के भी
त्रिकोणमण्डल में अर्द्धनारीश्वर शिव रहते हैं।

इसी स्थान में सब का मूलमन्त्र है, बिजली के समान वर्ण वाला प्रणव ॐ
पूर्णचन्द्र मण्डल भी इसी स्थान में स्थित हैं। इस चक्र में 'हं' आकाश—बी
स्वच्छ गोलाकार आकाश-मण्डल तथा श्वेत हस्ती पर आरूढ़, शुभ्र वस्त्र धार
किया हुआ आकाश है। आकाश के चार हाथों में पाश, अंकुश, वर अ
अभय हैं। आकाश की गोद के निकट अर्धनारीश्वर शिव हैं, इन्हीं को सदाशि
कहते हैं। ये शुक्लवर्ण, पञ्चमुख, त्रिनेत्र, दशभुजावाले हैं और ये व्याघ्र-चर्म
धारी हैं। इनके निकट शाकिनी शक्ति हैं। शाकिनी शुक्लवर्ण पीतवस्त्रा है
उनकी चार भुजाओं में बाण, धनुष, पाश और अंकुश हैं।

इस चक्र के ऊपर तालु-मूल में एक गुप्त चक्र है। इसका नाम ललना च
है। यह कमल लाल रंग का और बारह पाँखुरी वाला है। इसके प्रत्येक दल

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

द्धा, सन्तोष, अपराध, दम, मान, स्नेह, शोक, खेद, शुद्धता, अरति, संभ्रम र ऊर्म्मि, इन बारह वृत्तियों में से एक-एक वृत्ति रहती है।

इसके ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञा-चक्र नाम का द्विदल कमल है। इसके ऊपर मन करने के लिये गुरु की आज्ञा मात्र है, विशेष उपदेश नहीं है। इस चक्र भेद होने पर साधक स्वयं ब्रह्मस्थान में गमन कर सकता है। इस आज्ञा-चक्र द्विदल में 'हं' 'क्षं' ये दो लाल रंग के वर्ण हैं। कर्णिका के बीच में 'लं' वर्ण भी गुप्त रहता है। दो दलों और कर्णिका में सत्त्व, रज और तम ये न गुण रहते हैं। कर्णिका के भीतर त्रिकोण मण्डल में प्रणवाकृति तेजोमय रा लिंग है। इस स्थल पर हंस रूप पर शिव और उनकी शक्ति सिद्ध काली । यह 'यं' बीज और वायु का आलय है। त्रिकोण-मण्डल के तीन कोनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का वास है। इस चक्र में शुक्लवर्ण, षण्मुख-राजिता, चतुर्भुज हाकिनी शक्ति रहती हैं। उनके चार हाथों में ज्ञान मुद्रा, ाल, डमरू और जपमाला है। इसी चक्र को परम कुल कहते हैं। इसी चक्र मन और हकाराद्धं है। इसी चक्र को युक्त त्रिवेणी कहते हैं। क्योंकि इसी ह गङ्गा, यमुना और सरस्वती रूपा इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ियां ल कर सहस्रार तक चली गई हैं। इसके ऊपर एक गुप्त चक्र है। उसका म मनश्चक्र है। यह षड्दल कमल है। इसके हरएक दल (पांखुड़ी) में द-ज्ञान, स्पर्श-ज्ञान, रूप-ज्ञान, रसोपयोग और आघ्राणोपब्धि तथा स्वप्न और एक वृत्तियां क्रमशः रहती हैं।

सके ऊपर और एक गुप्त चक्र है। उसका नाम है 'सोमचक्र'। यह सोमचक्र ड़शदल है। इन षोड़श दलों को षोड़श कलाएँ कहते हैं। इसकी प्रथम ा का नाम कृपा, द्वितीय कला का नाम मृदुता, तृतीय कला का नाम धैर्य, र्थ कला वैराग्य पञ्चम कला धृति, षष्ठ कला सम्वत्, सप्तम कला हास्य ष्टम कला रोमाञ्च, नवम कला विनय, दशम कला ध्यान, एकादश कला सुस्थि-ा, द्वादश कला गाम्भीय त्रयोदश कला उद्यम, चतुर्दश कला अक्षोभ, पञ्चदश ला औदार्य एवं षोड़श कला एकाग्रता है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

कर्णिका में बिजली के समान चमकदार जो त्रिकोणमण्डल है उसे त्रिकोणशक्ति कहते हैं। इस त्रिकोणमण्डल के बीच में लाल रंग का बाणलिङ्ग है। उसके निकट नारायण और उनकी शक्ति भुवनेश्वरी रहती हैं। नारायण का रंग तपाये हुए सोने के सदृश है। उनकी दो भुजाएँ हैं और वे वर और अभय मुद्रा धारण किये रहते हैं। उनके निकट काकिनी शक्ति है। उनका रंग बिजली के समान है। चार हाथों में पाश, पानपात्र, वर और अभय विद्यमान हैं। वे त्रिनेत्रा सुधार्द्रहृदया, मत्ता और अस्थिमाल्य-विभूषिता हैं। इसी जगह कालरात्रि आदि बहुत सी शक्तियाँ हैं। इस चक्र में 'यँ' यह वायुबीज, धूम्रवर्ण षट्कोणमण्डल, गोलाकार वायुमण्डल, कृष्णसारवाहन, धूम्रवर्ण चतुर्भुज पवन शोभायमान है। इसी चक्र के मध्य में निर्वात दीपकलिकाकार (निर्वात स्थान में रक्खे हुए दीपक की लो के समान आकार वाले) जीवात्मा रहते हैं। उनके ऊपर कण्ठमूल में विशुद्ध चक्र और भारती स्थान नाम का धूम्रवर्ण षोडशदल कमल है। उसके हर एक दल में अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः इन सोलह वर्णों में से एक-एक वर्ण है। ये सब वर्ण लाल हैं। इनके अतिरिक्त निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम सात दलों में ये सात स्वर हैं और अवशिष्ट कर्णिका के भीतर त्रिकोणमण्डल में अर्द्धनारीश्वर शिव रहते हैं।

इसी स्थान में सब का मूलमन्त्र है, बिजली के समान वर्ण वाला प्रणव और पूर्णचन्द्र मण्डल भी इसी स्थान में स्थित हैं। इस चक्र में 'हं' आकाश—बीज, स्वच्छ गोलाकार आकाश-मण्डल तथा श्वेत हस्ती पर आरूढ़, शुभ्र वस्त्र धारण किया हुआ आकाश है। आकाश के चार हाथों में पाश, अंकुश, वर और अभय हैं। आकाश की गोद के निकट अर्धनारीश्वर शिव हैं, इन्हीं को सदाशिव कहते हैं। ये शुक्लवर्ण, पञ्चमुख, त्रिनेत्र, दशभुजावाले हैं और ये व्याघ्र-चर्म्म-धारी हैं। इनके निकट शाकिनी शक्ति हैं। शाकिनी शुक्लवर्ण पीतवस्त्रा है। उनकी चार भुजाओं में बाण, धनुष, पाश और अंकुश हैं।

इस चक्र के ऊपर तालु-मूल में एक गुप्त चक्र है। इसका नाम ललना चक्र है। यह कमल लाल रंग का और बारह पाँखुरी वाला है। इसके प्रत्येक दल में

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

श्रद्धा, सन्तोष, अपराध, दम, मान, स्नेह, शोक, खेद, शुद्धता, अरति, संभ्रम और ऊर्म्मि, इन बारह वृत्तियों में से एक-एक वृत्ति रहती है।

इसके ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञा-चक्र नाम का द्विदल कमल है। इसके ऊपर गमन करने के लिये गुरु की आज्ञा मात्र है, विशेष उपदेश नहीं है। इस चक्र का भेद होने पर साधक स्वयं ब्रह्मस्थान में गमन कर सकता है। इस आज्ञा-चक्र के द्विदल में 'हं' 'क्षं' ये दो लाल रंग के वर्ण हैं। कर्णिका के बीच में 'लं' यह वर्ण भी गुप्त रहता है। दो दलों और कर्णिका में सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण रहते हैं। कर्णिका के भीतर त्रिकोण मण्डल में प्रणवाकृति तेजोमय दूसरा लिंग है। इस स्थल पर हंस रूप पर शिव और उनकी शक्ति सिद्ध काली है। यह 'यं' बीज और वायु का आलय है। त्रिकोण-मण्डल के तीन कोनों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का वास है। इस चक्र में शुक्लवर्णा, षण्मुख-विराजिता, चतुर्भुज हाकिनी शक्ति रहती हैं। उनके चार हाथों में ज्ञान मुद्रा, कपाल, डमरू और जपमाला है। इसी चक्र को परम कुल कहते हैं। इसी चक्र में मन और हकारार्द्ध है। इसी चक्र को युक्त त्रिवेणी कहते हैं। क्योंकि इसी जगह गङ्गा, यमुना और सरस्वती रूपा इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ियाँ मिल कर सहस्रार तक चली गई हैं। इसके ऊपर एक गुप्त चक्र है। उसका नाम मनश्चक्र है। यह षड्दल कमल है। इसके हरएक दल (पाँखुड़ी) में शब्द-ज्ञान, स्पर्श-ज्ञान, रूप-ज्ञान, रसोपयोग और आघ्राणोपब्धि तथा स्वप्न और कई एक वृत्तियाँ क्रमशः रहती हैं।

सके ऊपर और एक गुप्त चक्र है। उसका नाम है 'सोमचक्र'। यह सोमचक्र षोड़शदल है। इन षोड़श दलों को षोड़श कलाएँ कहते हैं। इसकी प्रथम कला का नाम कृपा, द्वितीय कला का नाम मृदुता, तृतीय कला का नाम धैर्य, चतुर्थ कला वैराग्य पञ्चम कला धृति, षष्ठ कला सम्पत्, सप्तम कला हास्य अष्टम कला रोमाञ्च, नवम कला विनय, दशम कला ध्यान, एकादश कला सुस्थिरता, द्वादश कला गाम्भीर्य त्रयोदश कला उद्यम, चतुर्दश कला अक्षोभ, पञ्चदश कला औदार्य एवं षोड़श कला एकाग्रता है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

इसके ऊपर निरालम्ब पुरी है। योगी लोग इसी निरालम्ब पुरी में ज्योतिर्मय ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। इस निरालम्ब पुरी के ऊपर चमकीले शीशे के समान ज्योतिर्मय प्रणव का आवास है। इसके ऊपर शुक्लवर्ण नाद है और उसके ऊपर विन्दु है। इसके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में अधोमुख सहस्रदल कमल के नीचे एक ऊर्ध्वमुख द्वादशदल कमल है। यह कमल सफेद रङ्ग का है। इसी कमल की कर्णिका में बिजली की तरह अकथादि त्रिकोण रेखा है। इसीके मध्य में सुषुम्ना नाड़ी की अन्तिम सीमा है। उसके ऊपर विविध रङ्गों का अधोमुख सहस्रदल कमल है। द्वादशदल कमल के ऊपर सहस्रदल के मध्य में परम शिव का निवास है। कुण्डलिनी शक्ति को उत्थापित (जाग्रत्) कर इन्हीं परम शिव के साथ संयुक्त करना पड़ता है। परम शिव आकाशरूपी हैं। ये ही परमात्मा हैं और ये ही अज्ञानान्धकार के लिये सूर्यस्वरूप हैं। इन्हीं को शैव लोग शिव-स्थान, वैष्णव लोग परम पुरुष, कुछ लोग हरिहर-स्थान, कुछ लोग शक्ति-स्थान, कुछ लोग परमब्रह्म, कोई लोग परमहंस, कोई लोग परमज्योति, शाक्त लोग देवी-स्थान और सांख्यगण प्रकृति-पुरुष का स्थान कहते हैं। कोई-कोई इसी परम शिवस्थान को अकुल भी कहते हैं। इसी द्वादशदल कमल के ऊपर सहस्रार के अङ्क में सुधासागर, मणिद्वीप, मणिपीठ और त्रिकोण अकथादि रेखा है। उसके मध्य में नादविन्दु है। इस नादविन्दु रूपी पीठ के ऊपर परमहंस या हंसपीठ है। इस हंसपीठ के ऊपर गुरु-पादुका है। इस जगह पर सभी के गुरु विराजमान हैं। यही सब लोगों के गुरुध्यान का स्थान है। गुरु के पादपीठ-स्वरूप हंस का स्वरूप ज्ञानमय है। आगम और निगम उसके दो पर हैं, शिवशक्तिमय दो चरण हैं, उसकी चोंच प्रणव-स्वरूप है एवं नेत्र और कण्ठ कामकला-स्वरूप है। इस सहस्रदल कमल की गोद में अमा नाम की चन्द्रमा की षोडशी कला है। यह अमा-कला लाल रंग की निर्मल, बिजली की तरह तेजस्विनी, कमलनाल की तांत के समान सूक्ष्म और अधोमुखी है। यही अमा-कला चन्द्रमा की अमृतधारा धारण करती है।

अमा-कला के अंक में निर्वाण-कला है। वह भी अमा-कला के सदृश अर्द्धचन्द्राकार तथा सूर्य के समान दीप्तिमती है। यह केश के हजारवें भाग के

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

समान सूक्ष्म है। यह निर्वाण-कला ही सबका इष्टदेव है। इसी निर्वाण कला की गोद में परम निर्वाण-शक्ति विराजमान है। वह भी सूर्य के समान दीप्तिमती, अत्यन्त सूक्ष्मा और तत्त्वज्ञान की जननी है। इसके ऊपर विन्दु और विसर्गशक्ति विराजमान हैं। यही निखिल आनन्दों का मूल नित्यानन्द स्थान है। यहीं तक गुरु-शिष्य-भाव और उपदेश है। षडाम्नाय तक उपदेश है। सप्तमाम्नाय का उपदेश नहीं है। इस सहस्रदल कमल के प्रत्येक दल में अकारादि सब अक्षर लिखे हैं। मूलाधार आदि सब चक्रों एवं सकल ब्रह्माण्डों में जो पदार्थ हैं वे सब इसी स्थान में अव्यक्तरूप से विराजमान हैं।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

इसके ऊपर निरालम्ब पुरी है। योगी लोग इसी निरालम्ब पुरी में ज्योतिर्मय ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। इस निरालम्ब पुरी के ऊपर चमकीले शीशे के समान ज्योतिर्मय प्रणव का आवास है। इसके ऊपर शुक्लवर्ण नाद है और उसके ऊपर विन्दु है। इसके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में अधोमुख सहस्रदल कमल के नीचे एक ऊर्ध्वमुख द्वादशदल कमल है। यह कमल सफेद रङ्ग का है। इसी कमल की कर्णिका में बिजली की तरह अकथादि त्रिकोण रेखा है। इसीके मध्य में सुषुम्ना नाड़ी की अन्तिम सीमा है। उसके ऊपर विविध रङ्गों का अधोमुख सहस्रदल कमल है। द्वादशदल कमल के ऊपर सहस्रदल के मध्य में परम शिव का निवास है। कुण्डलिनी शक्ति को उत्थापित (जाग्रत्) कर इन्हीं परम शिव के साथ संयुक्त करना पड़ता है। परम शिव आकाशरूपी हैं। ये ही परमात्मा हैं और ये ही अज्ञानान्धकार के लिये सूर्यस्वरूप हैं। इन्हीं को शैव लोग शिव-स्थान, वैष्णव लोग परम पुरुष, कुछ लोग हरिहर-स्थान, कुछ लोग शक्ति-स्थान, कुछ लोग परमब्रह्म, कोई लोग परमहंस, कोई लोग परमज्योति, शाक्त लोग देवी-स्थान और सांख्यगण प्रकृति-पुरुष का स्थान कहते हैं। कोई-कोई इसी परम शिवस्थान को अकुल भी कहते हैं। इसी द्वादशदल कमल के ऊपर सहस्रार के अङ्क में सुधासागर, मणिद्वीप, मणिपीठ और त्रिकोण अकथादि रेखा है। उसके मध्य में नादविन्दु है। इस नादविन्दु रूपी पीठ के ऊपर परमहंस या हंसपीठ है। इस हंसपीठ के ऊपर गुरु-पादुका है। इस जगह पर सभी के गुरु विराजमान हैं। यही सब लोगों के गुरुध्यान का स्थान है। गुरु के पादपीठ-स्वरूप हंस का स्वरूप ज्ञानमय है। आगम और निगम उसके दो पर हैं, शिवशक्तिमय दो चरण हैं, उसकी चोंच प्रणव-स्वरूप है एवं नेत्र और कण्ठ कामकला-स्वरूप है। इस सहस्रदल कमल की गोद में अमा नाम की चन्द्रमा की षोडशी कला है। यह अमा-कला लाल रंग की निर्मल, बिजली की तरह तेजस्विनी, कमलनाल की तांत के समान सूक्ष्म और अधोमुखी है। यही अमा-कला चन्द्रमा की अमृतधारा धारण करती है।

अमा-कला के अंक में निर्वाण-कला है। वह भी अमा-कला के सदृश अर्द्धचन्द्राकार तथा सूर्य के समान दीप्तिमती है। यह केश के हजारवें भाग के

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

समान सूक्ष्म है। यह निर्वाण-कला ही सबका इष्टदेव है। इसी निर्वाण कला की गोद में परम निर्वाण-शक्ति विराजमान है। वह भी सूर्य के समान दीप्तिमती, अत्यन्त सूक्ष्मा और तत्त्वज्ञान की जननी है। इसके ऊपर विन्दु और विसर्गशक्ति विराजमान हैं। यही निखिल आनन्दों का मूल नित्यानन्द स्थान है। यहीं तक गुरु-शिष्य-भाव और उपदेश है। षडाम्नाय तक उपदेश है। सप्तमाम्नाय का उपदेश नहीं है। इस सहस्रदल कमल के प्रत्येक दल में अकारादि सब अक्षर लिखे हैं। मूलाधार आदि सब चक्रों एवं सकल ब्रह्माण्डों में जो पदार्थ हैं वे सब इसी स्थान में अव्यक्तरूप से विराजमान हैं।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

योगिराज श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल की
संक्षिप्त जीवनी

जन्म काल—

जिनके चरण स्पर्श से पृथ्वी पवित्र हो जाती है ऐसे दिव्य महापुरुषों में योगिराज श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल महाशय, बङ्ग देश के पुण्य भूमि नदिया जिलान्तर्गत साधन पाड़ा ग्राम में समुज्ज्वल नक्षत्र की तरह, जन्म ग्रहण कर, बङ्ग देश की आध्यात्मिक सम्पदा का परिचय देते हुए इसके गौरव की अभिवृद्धि की है। मुझे २५ वर्षों तक उनके पुनीत पावन चरणद्वय के समीप सदुपदेश सुनने का अवसर प्राप्त हुआ किन्तु मैं जघन्य जीव पूरा-पूरा आयत्त न कर सका। एक बार मन्दार पर्वत स्थित उनके आश्रम में गया। मेरे सत्यव्रत, नित्य योगमग्न महापुरुष ने मुझपर कृपा दृष्टि कर मुझे विश्व ब्रह्माण्ड में परमानन्द संचरण का अनुभूति कराया किन्तु मैं अपने शत-शत जन्मों के पाप के कारण धारण नहीं कर सका। इस कारण उस शक्ति को उन्होंने पुनः धारण कर लिया फिर भी छः महीने तक मुझे वाह्य जगत् का आकर्षण प्रायः लोप था। इन्हीं निष्कलंक ज्योति-प्रभा से आलोकित कृपामय की जीवनी आज लिखने का अवसर प्राप्त हुआ है। गुणातीत अवस्था के महापुरुष की जीवनी देव जीवन वाले पुरुष ही लिख सकते हैं। फिर कैसे उनका परिचय लिखूं। पिता श्रीकैलाश चन्द्र सान्याल तथा माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी के गर्भ से योगिराज का जन्म सन् १८७७ ईसवीं एवं माघ शुक्ल पक्ष के वुधवार को हुआ।

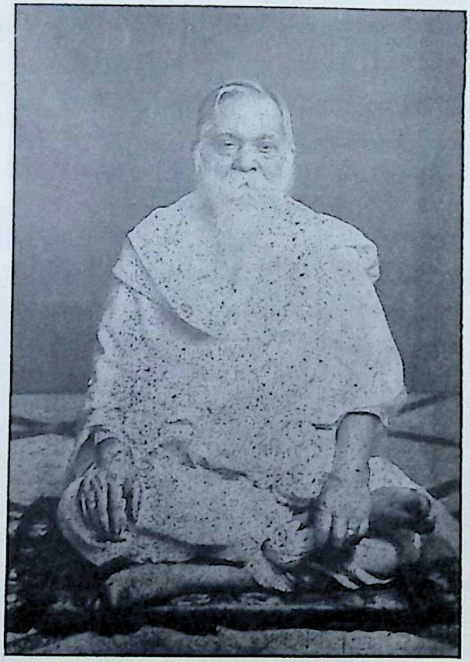
शैशव काल—

उनका जन्मान्तरीय संस्कार शिशु-जीवन से ही योगमग्न महापुरुष की तरह शान्ति प्रिय प्रतीत होने लगा। शिशु काल से ही इनकी निष्कलंक ज्योति-

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

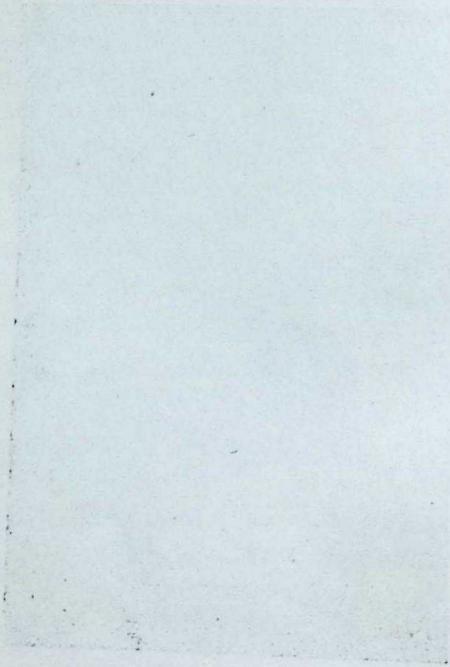
योगिराज श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल महाशय



अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi



l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

प्रभा आपके पूर्वकृतकर्म को परिलक्षित कर कहाँ ले जायगा इसका पता नहीं। दुर्भाग्य वश एक वर्ष आठ महीने की अवस्था में ही आप को पितृ-वियोग हुआ। इनके चार भाई तथा तीन बहनें थीं। दो वर्ष की अवस्था में वे अपनी माता के साथ मामा श्रीशिवचरण जी के घर बर्दवान चले गये। तीन वर्ष की अवस्था में निशरागढ़ के विद्यालय में प्रवेश किया। पुनः उनके मामा छः मास बाद अपने कर्म्मा जीवन स्थल साहब गंज संथाल परगना (बिहार) में ले आये, वहाँ उन्होंने विद्यारम्भ किया। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद वे विष्णुपुर अपने भगिनी-पति श्रीरामदास भट्टाचार्य के मामा श्रीशिवदास भट्टाचार्य के घर में आकर पढ़ने लगे। वहाँ वे दसवें कक्षा तक पढ़े। बालकपन से ही काली, सिधी, महाभारत और कृतिवास रामायण अपनी धर्म माता को सुनाया करते थे। मातृ-भक्ति उनके रोम-रोम में व्याप्त थी तथा सर्वदा गीता का आलोचना करते थे। उन्हें शिशुकाल से ही योगाभ्यास करने की बड़ी इच्छा थी। आपका यज्ञोपवीत १३ वर्ष की अवस्था में विष्णुपुर में हुआ।

गुरुदर्शन और दीक्षा लाभ —

आपको विष्णुपुर में ही स्वप्नावस्था में प्रथम गुरु दर्शन और योग दीक्षा प्राप्त हुआ। आप जब लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लेने काशी आये तो लाहिड़ी महाशय ने कहा कि आप को तो दीक्षा मिल चुकी है। तो भी गुरु से ठीक-ठीक क्रिया कलाप सीखने के निमित्त पुनः काशी में सन् १८९३ के आषाढ़ महीने में दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा प्राप्ति के छः सात मास बाद ही श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय ने आपको क्रियायोग दान करने का आदेश दिया। आपको गुरु और क्रिया में अत्यन्त भक्ति रही। आप अनेकों बार रोगाक्रान्त हुए तथा उनमें अनेकों घटनाएँ भी हुईं किन्तु गुरुकृपा से उन्हें कोई भी हानि नहीं हुई।

विवाह संस्कार और पत्नी भाग्य —

शान्तिपुर निवासी एक कर्मशील ब्राह्मण श्रीयोगेन्द्रनाथ राय की पत्नी श्रीमती सुराज कुमारी देवी की प्रथम कन्या श्रीमती कालीदासी देवी के साथ २१ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। श्रीमती कालीदासी

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

देवी जीवन पर्यंत शान्त और सुशील रहीं। प्रातःकाल वे सब से पहले उठतीं और अपने हाथ से भिक्षुओं को भिक्षा देतीं। ऐसी पुण्यवती नारी ने अपना सुदीर्घ जीवन धर्मपथ और स्वामी की सेवा में लगा कर प्रायः ६५ वर्ष की अवस्था में सन् १९५९ सज्ञानावस्था से देहावसान किया।

कर्मक्षेत्र में प्रवेश—

प्रथम आपके द्वारा साहेब गंज में एक स्कूल की स्थापना हुई। आप कुछ दिन तक शिक्षक पद पर कार्य्य किया। छात्र वर्ग में आपका अत्यन्त प्रभाव था। अनेकों छात्रों ने आप से दीक्षा प्राप्त की। पांच वर्षों तक विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ जी के साथ उनके आश्रम शान्ति निकेतन में रहकर उनका कार्य्य सँभाला। भागलपुर में कुछ दिनों तक एक कपड़े की दुकान की, तीन-चार मास तक चांचल के राजा के यहाँ ब्रह्मचर्याश्रम के निर्माण में कार्य्य किया। ९॥ वर्षों तक नरसिंह गढ़ स्टेट के राजकुमार के अध्यापक रहे।

सन् १९२३ में आपने उत्कल प्रान्त के पुरीधाम में सर्वप्रथम आश्रम एवं अन्यान्य विग्रहों की तथा गुरुदेव श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की मर्मर मूर्ति की स्थापना की।

आप कुछ दिनों तक थियोसोफिकल सोसाइटी के भी मेम्बर थे। एनीबेसेण्ट से आपका विशेष अनुराग था। सन् १९२४ या २५ में आपने बिहार प्रदेश भागलपुर जिलान्तर्गत पुण्य क्षेत्र मन्दार में गुरुधाम आश्रम तथा विद्यापीठ के नाम से सांगवेद विद्यालय एवं अपने गुरु श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी की मूर्ति और अन्यान्य विग्रहों की स्थापना की।

काशी आपका प्रिय स्थान था। साठ वर्षों तक प्रत्येक वर्ष के तीन चार माह काशी के योगाश्रम में रहा करते थे। कुछ दिन बाद हरिश्चन्द्र घाट के समीप अवधगर्वी मुहल्ले में एक मकान खरीद लिया। आपने कई ग्रन्थ बँगला भाषा में लिखा। जिसका हिन्दी अनुवाद होकर छपा है!—जैसे आत्मानुसन्धान, दिनचर्य्या, अभ्यासयोग, विल्वदल, शतदल, आश्रमचतुष्टय और श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी कृत श्रीमद्भगवद्गीता।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

आपने चारों धाम एवं भारतवर्ष के प्रायः सभी तीर्थ स्थानों एवं देवों का दर्शन किया तथा देवी देवताओं का साक्षात् भी हुआ। आपके चार हजार शिष्य थे जिसमें जर्मन, अमेरिकन, मुसलमान, हिन्दू, साधु-संन्यासी कोई भी इनकी कृपा से वञ्चित नहीं रहा।

जीवन की अलौकिक घटनायें—

योगिराज एक बार बर्दवान में अत्यन्त रोगाक्रान्त हुए, आपके मन में हुआ कि मृत्यु कैसे होती है, इसे देखना होगा। इसी समय एक ८ वर्ष की छोटी-सी बालिका के रूप में माता जगदम्बा प्रकट हुईं और पूछा "बाबू जी, क्या आप को डर लगा ?" आपने कहा "माँ मुझे डर लगा" देवी ने उत्तर दिया—"क्या मैं मृत्यु के इस पार में हूँ, उस पार नहीं हूँ ?" यह कहकर उन्होंने इनका स्पर्श किया और देवी अदृश्य हो गयीं।

आप पुष्कर सावित्री देवी के दर्शन के निमित्त गये। दोपहर का समय था खूब धूप थी बालू अत्यन्त गरम हो गयी थी और उसमें काँटे भी अधिक थे। आप नङ्गे पैर चल रहे थे। आपका प्यास से गला सूख रहा था प्रायः चेतना शून्य हो रहे थे। उसी समय १५ वर्ष की एक परम सुन्दरी बगल में एक चमकीला घड़ा लेकर आयी और उसने मधुर स्वर में पूछा "बाबूजी आपको प्यास लगी है ?" आपने कहा "हाँ माँ, प्यास लगी है" उस देवी ने घड़े से लोटे में जल ढालकर आपको पीने को दिया और देवी अदृश्य हो गयी। आपने पर्वत के चारों ओर ढूँढ़ा, चिल्लाया किन्तु पता नहीं लगा।

आपके गुरु श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय का दर्शन उनके देहावसान के बाद तीन बार हुआ।

एक दिन रात्रि में आपने देखा कि उनके खाट के चारों ओर कोई घूम रहा है। आपने उसे पहचान लिया। आप कह उठे—तुम जोतीन हो, यह सुनते वह मृतात्मा जोतीन आनन्द के मारे कूदने लगा। आपने फिर कहा "तुम प्रेत हो गये ? आज मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा।" इतना कहते आपने एक

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

श्लोक :—सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

उच्चारण कर अपनी शक्ति प्रयोग किया। इतने में ही देखा गया कि ज्योतिमण्डल आपके सामने घूमने लगा और थोड़ी देर बाद एक शब्द हुआ जो धीरे-धीरे आकाश में विलीन हो गया।

श्रीप्रफुल चन्द्र मजुमदार आपके अंतरंग पुरुषों में थे। मजुमदार महाशय की मृत्यु अल्प उम्र में हो गई थी। आपके मृत्यु के बाद साक्षात् हुआ था और आपसे बहुत गोपनीय बातें हुई थीं। आपने उनसे पूछा कि तुम कब आते हो? तो उन्होंने कहा कि जब मैं आऊँगा तो आप नहीं रहेंगे।

श्रीअरविन्द को आप बहुत चाहते थे उनसे उन्हें अंतरंग अनुराग था। मृत्यु के बाद एक बार उन्हें देखने की इच्छ हुई। श्री अरविन्द आये और दर्शन दिया तथा बातें कीं।

आप एक बार साहबगंज पर्वत पर जा रहे थे, ऊपर से एक जंगली भैंसा दौड़ता हुआ आ रहा था। लोग चिल्ला रहे थे "भागो भागो" आप भी निरुपाय थे। तो भी आपने उस भैंसे से मन ही मन मैत्री स्थापित की। भैंसा आया और अपना सिर आपके कन्धे पर रख दिया। थोड़ी देर तक आपने उसे प्यार किया और उसके शरीर को पोंछा। बाद में कहा "अब चले जाओ, मुझे बहुत डर लग्ता।" भैंसा मंत्रमुग्ध की भाँति धीरे-धीरे चला गया। आपका जीवन-काल जन-मानव के त्रितापज्वाला बुझाने पर्यन्त में ही व्यतीत हुआ। अनेक मृतात्माओं को मुक्ति प्रदान, अनेक देवी देवताओं से अलौकिक व्यापार, अनेक अद्भूत दृश्यों के दर्शन, अनेक असाधारण सिद्ध साधकों के साथ साक्षात्कार आदि अनेक घटनायें हुईं।

महाप्रयाण—

इस प्रकार ६० वर्षों तक जनसाधारण में योगाभ्यास का प्रचार कर जिज्ञासु-वर्ग का सन्देह दूर करते हुए १८ जनवरी सन् १९६२ बृहस्पतिवार को

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

योगिराज का देव शरीर का देहावसान हुआ। आज भी उनकी स्मृतिपूजा, मन्दार पर्वत स्थित गुरुधाम आश्रम एवं चटक पहाड़ पुरीधाम में उनकी समाधि और उनका स्मृति मन्दिर प्रतिष्ठित है जहाँ अनेक भक्तगण नित्य पूजा कर उनकी पवित्र स्मृति की रक्षा करते आ रहे हैं।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

भूमिका

इस ग्रन्थ में मैं अपने पुज्य गुरुदेव योगिराज श्रीहरिनारायण पालवि महाशय जी की कतिपय अनुभूत 'मायायन्त्र' संक्षिप्त व्याख्या के साथ प्रकाशित किया है। किन्तु दुरूह होने के कारण वह सर्वसाधारण के बोधगम्य नहीं है तो भी इससे योगमार्ग के ऊच्च भूमिकापन्न साधक लाभ उठा सकेंगे। इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में इस मायायन्त्र का विस्तृत व्याख्या लिखेंगे। पाठकों एवं जिज्ञासुओं के लिये दसचक्र का अनुमान करना आवश्यक होगा क्योंकि बिना उसके इस यन्त्र के तत्त्व वास्तविक रूप से बोधगम्य नहीं होगा।

इसमें कर्मयोग शब्द का अर्थ है क्रियामिलन। अब जिज्ञासा है कि क्रिया किसको कहते हैं और वह क्रियाशक्ति किसमें है। भागवत में कहा है कि—"प्राणस्य हि क्रियाशक्तिः" अर्थात् प्राण में क्रियाशक्ति है जड़ में नहीं। यह प्राण शक्ति शब्दात्मिका चेतनशक्ति नाम से कही जाती है और यही ओङ्कार स्वरूपा है और इसी का हंस शब्द से संचार व प्रत्याहार अर्थात् ऊर्ध्वाधः गति होती है। इसी को योगसूत्र में कहा है—'प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम्।'

अब भी जिज्ञासा है कि प्राण किसको कहते हैं।

काशी खण्ड में कहा है।

'षट्तिशदङ्गलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः
सव्यापस व्यमार्गेण प्रयाणात्प्राण उच्यते'

इसके अनुसार केवल प्राण अर्थात् हंस शब्द से जीव का सम्बन्ध होना चाहिये। यह हंस प्रवाह मणिपूरचक्र से मायाचक्र तक है। इसमें सत्त्वगुणात्मक चैतन्य ईश्वर का वास है और जीव मणिपूरचक्र के नीचे अपान वायु के साथ सोहं प्रवाह में प्राप्त होता है और इन दोनों प्रवाहों की एक दूसरे के परस्पर आकर्षण से विषम गति होती है।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

'अपान कर्षतिप्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति।
सोहं हंसः पदे नैव जीवो जपति सर्वदा'

और इसी कारण जीव नाभि के ऊपर उठ नहीं सकता न ईश्वर को बोध कर सकता है उसकी जन्म-मरण से कभी निवृत्ति नहीं होती इस कारण यातायात की निवृत्ति के लिये प्रथम दीक्षा द्वारा प्राणापान की विषम गति को सम करके एक हंस का प्रवाह कर दिया जाता है। और उसी से उसका सम्बन्ध होता है। इसी का नाम कर्मयोग है। इसका स्थान राजससत्त्व में है जो कि मूलाधारचक्र से मायाचक्र तक है। इस मार्ग में क्रिया करते समय नासिका के छिद्र से वायु बाहर नहीं निकलती है और न नासिका बन्द करने की ही आवश्यकता पड़ती है। इसको साधक स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं यही मुख्य कर्म है।

इस कर्म के अवान्तर दो भेद जानना चाहिये असंस्कृत और संस्कृत। दीक्षित पुरुष जब तक नाभि नहीं भेदता तब तक उसका असंस्कृत कर्म होता है क्योंकि रजोगुण की मात्रा तीन पाद में विभक्त रहती है। मूलाधार से स्वाधिष्ठान तक एक पाद, स्वाधिष्ठान से नाभिचक्र तक दो पाद, नाभी से अनाहत तक तीन पाद। नाभि भेदने पर सत्त्व, रज, तम के तीनों पाद बराबर हो जाते हैं। बस इतना ही भेद है। अदीक्षित पुरुष का नाभि के नीचे तामस सत्त्व ही रहता है। इसको जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ता है। नाभि के नीचे असंस्कृत कर्म करने वाले दीक्षित पुरुष का सुषुप्ति नहीं होती। उसकी एक अवस्था का परिवर्तन हो जाता है उसकी जाग्रत्सुषुप्त्यवस्था होती है। नाभि भेदने पर जीव नाभि से मायाचक्र तक राजससत्त्व में संस्कृत कर्म करता है। अर्थात् हंस मन्त्र का उच्चारण करता है। यह द्वितीय दीक्षा है। इस अवस्था वाले जीव की भी एक अवस्था का परिवर्तन हो जाता है उसको स्वप्न नहीं होता उसकी अवस्था का नाम जाग्रत् स्वप्नावस्था है।

इस अवस्था में हंस शब्द के साथ जीव की ऊर्ध्वाधः गति होती है। कभी-कभी बीच में पञ्चकोष के बाहर जाकर चैतन्य में अटक जाता है और चैतन्य का ही बोध करता है। जब माया के आकर्षण से फिर नीचे आता है तो जड़ वस्तु का बोध करता है। कभी चैतन्य कभी जड़ ऐसा बोध करते-करते

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

उसके मन में बड़ा वितर्क हो जाता है कि इसमें कौन सत्य है। इसी अवस्था को पातञ्जल योगसूत्र में वितर्कावस्था कहा है इसीमें जीव को ज्ञानशून्य भक्ति प्राप्त होती है। यह गति करते-करते मायाचक्र भेदने पर जब हंस का प्रवाह समाप्त हो जाता है तो पञ्चकोष के बाहर सोहं प्रवाह अर्थात् (सत्त्वगुण में) ज्ञानस्वरूप चैतन्य के साथ उसका योग होता है इसी से इसका नाम ज्ञानयोग है। गीता में कहा है—'सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानम्' इसमें जीव की हर समय जाग्रदवस्था रहती है। भागवत में लिखा है सत्त्वञ्जागरणं विद्याद् रजसास्वप्नमादिशेत्। प्रस्वापं तमसां जन्तो स्तुरीयं त्रिषु संततम।

यह प्रवाह मायाचक्र से आज्ञाचक्र तक है। इस प्रवाह में जीव सोपाधिक चैतन्य ईश्वर का बोध करता है इस कारण यह ज्ञान मिश्र सोपाधिक पराभक्ति कही जाती है इसी को अकर्म भी जानना चाहिये और इन्हीं गुण कर्म के विभाग से चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था भी होती है।

सोहं प्रवाह अर्थात् (सत्त्वगुण) में ब्रह्म को बोध करने वाले तृतीय दीक्षापन्न जीव की ब्राह्मणत्वावस्था संस्कृत कर्म रूप हंस प्रवाह अर्थात् (राजससत्त्व में) संस्कृत कर्म करने वाले द्वितीय दीक्षापन्न जीव की क्षत्रियत्वावस्था, नाभि के नीचे असंस्कृत कर्म रूप हंस प्रवाह अर्थात् (राजससत्त्व में) प्रथम दीक्षा वाले जीव की वैश्यत्वावस्था, अदीक्षित जीव की तामससत्त्व में शूद्रत्वावस्था यही क्रम है।

सत्त्वगुण समाप्त करके आज्ञाचक्र अर्थात् (शुद्धसत्त्व) जीव जब ब्रह्म स्वरूप से स्थित होता है तब यह शुद्धसत्त्वात्मक चैतन्य विशुद्धसत्त्वात्मक परब्रह्म का बोध करता है इस कारण यह निरूपाधिक पराभक्ति कही जाती है। इसी को शाण्डिल्यसूत्र में कहा है 'सापरानुरक्तिरीश्वरे'। यही सम्प्रज्ञात अर्थात् सविकल्प समाधि कही जाती है यही विकर्म है। आज्ञाचक्र भेदने पर अर्थात् शुद्धसत्त्व का अतिक्रमण कर सहस्रार के प्रवाह अर्थात् (विशुद्धसत्त्व) के प्रवाह में असम्प्रज्ञात अर्थात् निर्विकल्प समाधि होती है। विशुद्धसत्त्व को प्राप्त करने पर निर्वाण पद का लाभ होता है।

रामावतार प्रसाद 'विशारद'

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

माया-यन्त्र

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रा रूढानि मायया॥

सब भूतों के हृदय में अन्तर्यामी ईश्वर रहते हैं। वे सारे भूतों को स्वशक्ति (माया) के प्रभाव से पूर्वकृत कर्मों के संस्कार के अनुसार मायायन्त्र द्वारा परिचालित करते हैं इस देह के भीतर मूलाधारादि पञ्चचक्र भेद करके मेरुदण्ड के मध्य भाग में जो सुषुम्ना-नाड़ी प्रवाहित होती है उसके भीतर एक ब्रह्मनाड़ी वर्तमान है, उसके भीतर जो शक्ति या ब्रह्माकाश रहता है वही सर्वशक्ति-सम्पन्न ईश्वर है उसीके शासन में यह माया-यन्त्र परिचालित होता है।

जब जीव स्वस्थान से च्युत होता है तभी इस अविरत माया-यन्त्र में घूमता है। यह यन्त्र भगवान के स्वरूप के नीचे है। ब्रह्म का "एकोऽहं बहुस्याम" सङ्कल्प ही यह माया-यन्त्र है। यही मानों उसकी सृष्टि है तथा इस सृष्ट-माया यन्त्र में उसका अनुप्रवेश है। यह यन्त्र ध्यानावस्था में योगियों द्वारा बोध गम्य है।

स्वर्गीय परम पूज्य गुरुदेव योगिराज श्रीहरिनारायण पालधि महाशय के अपने परिपक्व अनुभव से प्राप्त इस देह के भीतर माया-यन्त्र कैसे चल रहा है और साधना द्वारा उस त्रिगुण यन्त्र का त्रिविध दीक्षा द्वारा कैसे परिवर्तन होता है तथा जीव तदनुसार किस प्रकार क्रम से गुण मुक्त होकर समाधिस्थ होता है। गर्भावस्था आदि से निर्विकल्प समाधि पर्यन्त नौ चित्रों का गुप्त रहस्य व्यक्त किया जाता है। इसके पूर्व पृष्ठ १९ में देह के भीतर चक्रों की रचना की जा चुकी है।

---

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

प्रथम चित्र—गर्भावस्था

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मद्वार, परंपद, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, शब्दब्रह्म, इतरलिङ्ग, म प्रणव, सोऽहं, काल, साक्षी, तत्।

(५) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, पिण्ड, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, कालचक्र, दशमद्वार, द्यावाभूमि, त्रिकुटी।

(६) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, बाणलिङ्ग, अ, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं।

(७) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र।

(८) विशुद्धात्म, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य।

(९) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य।

(१०) अनाहत, ईश्वर, नियन्तृ, विज्ञानमयकोष।

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि।

(१२) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य।

(१३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष।

(१४) मूलाधार, अन्नमयकोष।

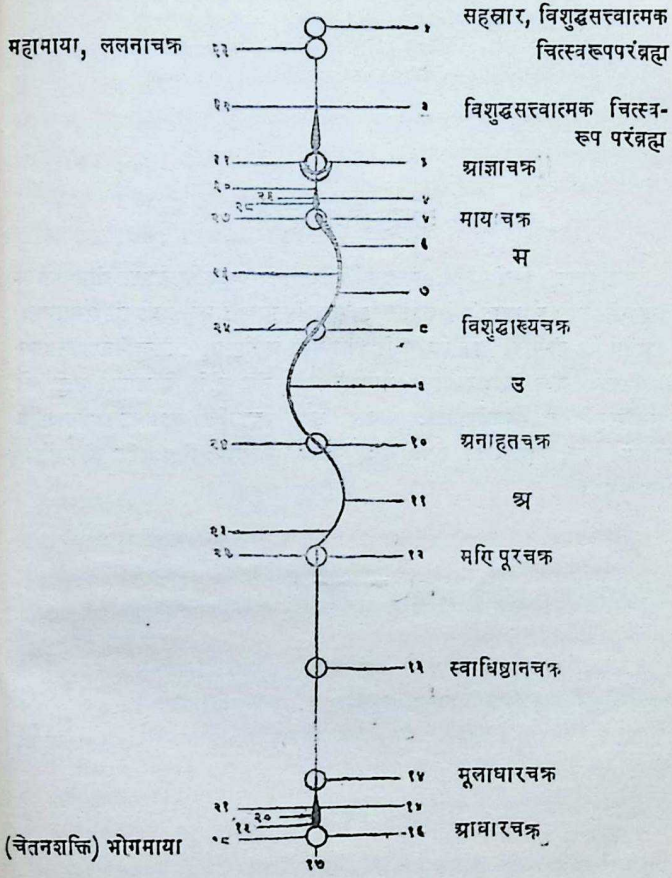
(१५) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, स्वयंभूलिङ्ग उ, जीव।

(१६) आधारचक्र।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

* प्रथम चित्र *



(गर्भावस्था)

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

प्रथम चित्र रहस्य

गर्भावस्था, विलोमगति, मायाशक्ति अर्थात् जड़शक्तिस्वरूपा योगमाया व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया की एकात्मता, लिङ्गत्रय का संस्थान, साक्षीस्वरूप से काल का अधिष्ठान, नियन्तृनियमम्यस्वरूप से ईश्वर व जीव का अवस्थान, मायाशक्ति के संग होने के कारण ब्रह्म को आत्मविस्मृति व विपर्ययवशतः जीवत्व भ्रम, ब्रह्मशक्ति का पतन मायाशक्ति का अभ्युत्थान, बद्धावस्था, हंसः सोऽहं शब्द के साथ शिव शक्ति की गति। योगावस्था।।

---

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

(१७) सुषुम्णा ।

(१८) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(१९) सूक्ष्म ।

(२०) मात्रा, मध्यमा ।

(२१) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(२२) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ।

(२३) स्थूल + व्यञ्जन, पश्यन्ती ।

(२४) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ।

(२५) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः त्रिपुरसुन्दरी ।

(२६) सत्त्व, अग्नि, गङ्गा, वैष्णवी, विद्या ।

(२७) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति अर्थात् जड़शक्तिस्वरूपा योगमाया, त्रिपुरसुन्दरी + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया ।

(२८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(२९) कारण ।

(३०) स्वर, परा ।

(३१) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(३२) एकमेवाऽद्वितीयम्, महाकारण ।

(३३) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ।

गर्भावस्था की व्याख्या

जीव सृष्टि के समय सूक्ष्म स्पन्दन होने के कारण सहस्रारचक्र से आज्ञा-चक्र तक शून्य का प्रवाह हुआ जिसमें विशुद्ध सत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म स्वरूप

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

से अधिष्ठित हुए। तब वह, हम सत् हैं या चित् हैं या आनन्द हैं हमारी शक्ति कैसी है, इसका स्वयं बोध नहीं कर सके, जैसे चीनी स्वयं अपना बोध नहीं कर सकती। तो ब्रह्म में एकोऽहं बहुस्याम। इस प्रकार की इच्छा हुई।

तब रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति प्रधाना चित्शक्ति स्वरूपा महामाया नाम से संकल्प द्वारा पृथक् होकर आज्ञाचक्र में अधिष्ठित हुई। यह शक्ति त्रिगुणात्मिका है। इसलिये तमोगुणात्मिका अहंकाररूपा क्रियाशक्ति प्रधाना मायाशक्ति, जड़शक्ति, स्वरूपा योग माया नाम से सोमचक्र में स्थित हुई। इसीसे उसको मायाचक्र कहते हैं। पुनः शुद्ध सत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्ति प्रधाना ब्रह्मशक्ति, चेतन शक्ति स्वरूपा भोगमाया नाम से आधारचक्र में स्थित हुई। ऐसी अवस्था में चेतनशक्ति नीचे और जड़शक्ति ऊपर होने के कारण पुनः परिवर्तन हुआ। अर्थात् उस प्रवाह का प्रत्याहार कर भोगमाया आज्ञाचक्र में स्थित हुई और रजोगुणात्मिका महामाया आधारचक्र में स्थित हुई। इस प्रकार ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति, स्वरूपा भोगमाया, योगमाया, महामाया का स्थान विभाग वर्णन किया।

तब उस आज्ञाचक्र स्थिता चेतन शक्तिस्वरूपा भोगमाया अर्थात् चित्तदर्पण में चित्स्वरूप परब्रह्म, चित्तरूपी ब्रह्मस्वरूप से प्रतिबिम्बित हुए। इसी चित्स्वरूप परब्रह्म व चित्तरूपी ब्रह्म को, जो कि बिम्ब प्रतिबिम्ब है, वेदान्त शास्त्र में चित् चिदाभास कहा गया है।

अब इसी चेतनशक्ति स्वरूपा भोगमाया से तीन गुण का प्रवाह हुआ, अर्थात् आज्ञाचक्र से मायाचक्र तक रजोगुण का प्रवाह हुआ इसमें राजसत्त्वात्मक चैतन्य ब्रह्म का अधिष्ठान है। मायाचक्र से मणिपूरचक्र तक सत्त्वगुण का प्रवाह हुआ इसमें सत्त्वागुणात्मक चैतन्य विष्णु का अधिष्ठान है और मणिपूर से आधारचक्र तक तमोगुण का प्रवाह हुआ इसमें तामस सत्त्वात्मक चैतन्य शिव का अधिष्ठान है। यह तीनों शब्दात्मक चैतन्य हैं। इस प्रवाह में ओंकार उ, अ, म से है।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अब चित्तरूपी ब्रह्म आज्ञाचक्र से "हं" शब्द से स्पन्दित होकर मायाचक्र तक आये तब उस माया का संग होते ही पूर्व प्रवाह का प्रत्याहार हो गया अर्थात् महामाया आज्ञाचक्र में अधिष्ठित हुई और भोगमाया का आधारचक्र में पतन हुआ। अतएव ऊपर रहने के कारण योगमाया बलवती हुई। तब महामाया से प्रकारान्त गुण का प्रवाह हुआ अर्थात् आज्ञाचक्र से मायाचक्र तक तमोगुण का प्रवाह जिसमें शिव की ब्रह्म संज्ञा है और वह काल स्वरूप से साक्षी है। मायाचक्र से मणिपूर तक सत्त्वगुण का प्रवाह हुआ जिसमें विष्णु की ईश्वर संज्ञा है और वह नियन्तृ स्वरूप से मायोपहित चैतन्य होने के कारण सोपाधिक चैतन्य हैं। और मणिपूर से आधारचक्र तक रजोगुण का प्रवाह हुआ जिसमें ब्रह्म की जीव संज्ञा है और वह नियम्य स्वरूप से सोपाधिक चैतन्य है। इस प्रवाह में ओंकार म, ऊ, उ, के स्वरूप से हैं।

अब वही वित्शक्ति में प्रतिविम्बित रजोगुणात्मक ब्रह्म, मायाशक्ति के संग से सोपाधिक होकर जीव संज्ञा को प्राप्त हुआ। अब जीव मूलाधार से सो शब्द से प्रत्याहृत होकर मणिपूरचक्र में आकर सत्त्वगुणात्मक विष्णु अर्थात् ईश्वर के प्रवाह से मिलकर जीव तथा ईश्वर दोनों एक प्रवाह में आ गये।

टिप्पणी—

मायाचक्र से मणिपूर तक जो प्रवाह है वह स्वतंत्र रूप से भोगमाया का है क्योंकि चतुष्पाद चैतन्य के इसी एक पाद में मायाशक्ति का खेल है। इसीमें त्रतुर्दश भुवन है। वेद में स्पष्ट कहा है—

पादाऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

अतः इसी एक पाद में मणिपूर से अनाहत् तक अकारात्मक ऋग्वेद, अनाहत् से विशुद्धाख्य तक उकारात्मक यजुर्वेद और विशुद्धाख्य से मायाचक्र तक मकारात्मक सामवेद है। भगवान ने गीता में कहा है। "वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।" इस ओंकार के तीनों पाद में विश्व, तैजस, प्राज्ञ भी समझना चाहिये। इस अवस्था में जीव और ईश्वर एक ही प्रवाह में है जीव सत्वगुण में

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund

ईश्वर चैतन्य के साथ गति करने के कारण चैतन्य मात्र का बोध करता है और इसे बहुत जन्मों के कर्मों का स्मरण है। उसकी ज्ञानशक्ति प्रधान है।

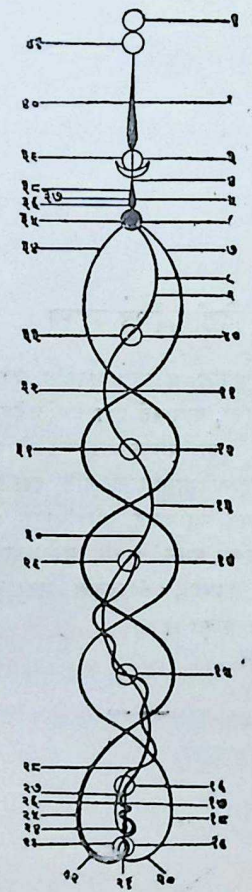
इस अवस्था में चित्तशक्ति स्वरूपा महामाया का, जिसको शास्त्र में सर्पाकार कुल कुण्डलिनी शक्ति कहा है, मुख ऊपर है तथा इसमें अ उ म् तीन पाद है। शब्दात्मिका चित्तशक्ति मायाचक्र से नाभीचक्र तक हं शब्द से संचार व सो शब्द से प्रत्याहार करती है। इसमें प्राणगति अन्दर सुषुम्ना में है। यही जीव का गर्भावस्था है।

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

* द्वितीय चित्र *



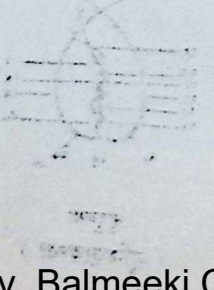
al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund



द्वितीय चित्र रहस्य

भूमिष्ठावस्था—रजोगुणवृद्धि, अविद्याप्रधानगति, अवच्छिन्नगति, विलोमगति, विषमगति, दक्षिणावर्त पिङ्गला; वामावर्त इडा अर्थात् देवयान पितृयान में विषस्वरूप रजोगुणात्मक सूर्य तथा अमृतस्वरूप चन्द्र की गति, पिङ्गला और इडा नाड़ी में रजस्तमोगुणात्मिका अविद्याशक्ति की गति, इडा पिङ्गला सुषुम्ना नाडिस्वरूपा गंगा यमुना व सरस्वती का प्रवाह, ग्रन्थिविभाग, अविद्यासंग से जीव का स्थूल देहात्मबोध, अज्ञानावस्था, अधम, तामस, शूद्रत्वावस्था, कलियुग, द्वैतबोध अन्योन्याभाव, पूर्णविस्मृति जड़बोध, संसारगति अपरागति, कर्म, मोहरात्रि, ज्ञानचक्षु निमीलित स्वर्गद्वार आवृत ।।



l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

द्वितीयचित्र-भूमिष्ठावस्था

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल सत्, चित्, आनन्द ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत् ।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमंडल, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमंडल, भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, शब्दब्रह्म, इतरलिङ्ग, म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ।

(५) सरस्वती ।

(६) मायाचक्र, चन्द्रमंडल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, त्रिकुटी, दशमद्वार, कालचक्र, द्यावाभूमि ।

(७) पिङ्गला, यमुना ।

(८) तमः, म, साम शिव, प्राज्ञ, चन्द्र ।

(९) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, ईश्वर, वाणलिङ्ग, अ, हंसः, ओं ।

(१०) विशुद्धाख्य, भुवः, मर्त्य, आनन्दमयकोष ।

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि ।

(१२) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ।

(१३) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य ।

(१४) मणिपूर, मनोमयकोष, भूः, पाताल, सूर्यमंडल, जीव, नियम्य, तामिस्र ।

(१५) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ।

(१६) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund

(१७) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, जीव, स्वयंभूलिङ्ग, उ ।

(१८) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ।

(१९) आधारचक्र ।

(२०) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः सूर्य, पुरुष ।

(२१) सुषुम्ना ।

(२२) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ।

(२३) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(२४) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(२५) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा अविद्या ।

(२६) सूक्ष्म ।

(२७) मात्रा, अनुदात्त, ह्रस्व, मुदारा, मध्यमा ।

(२८) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी, विद्याशक्ति ।

(२९) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, भव, रजः, काली ।

(३०) स्थूल ।

(३१) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ।

(३२) व्यञ्जन, स्वरित प्लुत, उदारा, पश्यन्ती ।

(३३) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ।

(३४) गंगा, इडा ।

(३५) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति अर्थात् जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुर सुन्दरी ।

(३६) कारण ।

(३७) स्वर, उदात्त, दीर्घ, तारा, परा ।

(३८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(३९) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(४०) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(४१) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, चन्द्रमंडल, महाकालो, ललनाचक्र, कैवल्य ।

भूमिष्ठावस्था की व्याख्या

गर्भावस्था में चैतन्य ईश्वर के संग जो गति थी उसका परित्याग कर उसका परिवर्तन किया अर्थात् पूर्वोक्त ओंकार का प्रत्याहार करके दूसरे ओंकार का संचार किया जिसमें मायाचक्र से विशुद्धाख्य तक रजोगुणात्मक उ कार का विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्त्वगुणात्मक अकार का अनाहत से मणिपूर तक तमोगुणात्मक मकार का प्रवाह हुआ यह रजः प्रधान ओंकार की अनुलोप गति है फिर उसका प्रत्याहार करके ओंकार की विलोम गति की ।

मायाचक्र से विशुद्धाख्य तक तमोगुणात्मक मकार का, विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्त्वगुणात्मक अकार का, अनाहत से मणिपूर तक रजोगुणात्मक उकार का प्रवाह हुआ ।

ऐसी अवस्था में राजसत्त्वात्म ब्रह्म अर्थात् जीव का जो प्रवाह मणिपूर से आधार चक्र तक था नीचे बढ़ाकर साढ़े तीन पाद कर दिया । और जो सत्वगुण में हं तथा सो शब्द में चेतनशक्ति थी उस प्रवाह को भी मणिपूर से अवच्छिन्न करके अर्थात् दो टुकड़े करके मायाचक्र से मणिपूर तक हंस का प्रवाह किया और मणिपूर से आधारचक्र तक सोहं का प्रवाह किया उसमें सर्पाकारा चेतनशक्ति अधिष्ठित हुई ।

गर्भावस्था में वही सर्पाकारा चेतनशक्ति चैतन्य के साथ मिलकर गति करती थी तब उसका मुख ऊपर था और मणिपूरचक्र में पूंछ थी किन्तु जब यह चैतन्य से विच्छिन्न हुई तो वह उलट गयी उसका मुख आधारचक्र में आ गया, तब उसी मुख से राजसत्त्वात्मक ब्रह्म अर्थात् स्वयंभूलिङ्ग रूपधारी जीव को साढ़े तीन पेंच कुण्डलाकार से लपेटा ।

तन्त्र में कहा है—"सार्धत्रिवलयाकार स्वयंभूलिङ्गवेष्टिनी ।"

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

अवशिष्ट अंश से मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्र को भेदती हुयी मणिपूर-चक्र तक पहुँच कर फिर वहाँ से जब लौटी तो अपने आपको आठ पेंच से लपेट कर आधारचक्र तक पहुँच कर जहाँ इसका मुख था उसी मुख से पोंछ थाम लिया। तन्त्र में कहा है—"संवेष्ट्य सकलानाडीरष्टधाकुण्डलीकृता। मुखे निवेश्य तत्पुच्छं सुषुम्नाविवरेस्थिता" गर्भावस्था में जिस ओंकार का उच्चारण होता था उसमें तीन पाद अ, उ, म, था वही ओंकार रजोगुणात्मक, उकार को ढाई पाद बढ़ाकर साढ़े पाँच पाद हो गया और मणिपूर से अवच्छिन्न कर इसी में हंस सोऽहं दो गति की अर्थात् मायाचक्र से विशुद्धाख्य तक तमोगुणात्मक मकार, विशुद्धाख्य से अनाहत तक सत्वगुणात्मक अकार और अनाहत से मणिपूर तक रजोगुणात्मक उकार। यह हंस की गति है। और मणिपूर से स्वाधिष्ठान तक एक पाद, स्वाधिष्ठान से मूलाधार तक दो पाद और मूलाधार से आधार तक आधापाद इस ढ़ाई पाद में सोऽहं की गति की। दोनों मिलाकर साढ़े पाँच पाद ओंकार का संगठन किया जिससे चित्तशक्ति के साथ जीव आधारचक्र से मणिपूर तक गति करके फिर वहीं चला जाय। नाभि भेद कर अपने स्थान में कभी न जा सके।

इसमें हंस शब्द में प्राण वायु का आश्रय है और सोऽहं शब्द में अपान वायु का आश्रय है और नाभि अर्थात् मणिपूरचक्र में समान वायु रहती है इसी से प्राण अपान की विषम गति होती है इसी कारण एक दूसरे से नहीं मिल सकता। किन्तु इस गति में भी सत्त्वगुण होने के कारण उसको चैतन्य का बोध था। तब उस जीव को जड़ बोध कराने के लिये उस कुल कुण्डलिनी शक्ति ने अपने मुख के बाहर वाम तथा दक्षिण भाग में इड़ा व पिङ्गला दो नाड़ी की रचना की फिर अपने मुख से दूसरी एक सांपिन पैदा करके इड़ा नाड़ी में उसका मुख और पिङ्गला नाड़ी में पोंछ को मायाचक्र तक प्रवाहित किया और उसी मुख के अंश में तमोगुण व पोंछ के अंश में रजोगुण की स्थिति करके पृथक-पृथक तीन नाड़ी में तीन गुण का प्रवाह किया इसी को गीता में "गुण प्रवृद्धाः" कहा है। उसी तमोगुण में आवरणशक्तिरूपा अविद्या व रजोगुण में विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या माया को स्थान दिया और स्वयं सत्त्वगुण में

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

विद्या शक्ति रूप से अधिष्ठित हुई। कुण्डलिनी का मुख नीचे था इससे यह प्रवाह नीचे से ऊपर को गया है। इस कारण गीता में "अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः" ऐसा कहा गया है।

अस्तु प्रकृत में दोनों गुण में अविद्या माया का अधिष्ठान होने पर भी जड़ के कारण से दोनों प्रवाह की गति होना असंभव है इसलिये चित्तशक्ति स्वरूपा कुंडलिनी शक्ति वाम भाग में प्रकृति अर्थात् चेतनशक्ति स्वरूप से अधिष्ठित होकर सोऽहं शब्द से चन्द्र की गति करने लगी और दक्षिण भाग में पुरुष अर्थात् चैतन्य स्वरूप से अधिष्ठित होकर हंस शब्द से सूर्य की गति करने लगी वाम तथा दक्षिण भाग में प्रकृति पुरुष हैं।

अब दोनों प्रवाह को गति होने लगी। तब इच्छा ज्ञान क्रियात्मिका चित् शक्ति ने रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति स्वरूप से पिङ्गला नाड़ी में प्रवेश किया और उसी मन के साथ-साथ रजोगुणात्मक जीव भी पिङ्गला नाड़ी में चला गया तब जीव की सुषुम्ना की गति छूट गयी अर्थात् ज्ञान मार्ग बन्द हो गया। "मुखेनाच्छाद्यतद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।" यही जीव की भूमिष्ठावस्था है। इस अवस्था में जीव की विपरीत गति हो गयी। भाव यह है कि शब्दात्मिका चित्शक्ति का गर्भावस्था में मायाचक्र से नाभिचक्र तक हं शब्द से संचार व सो शब्द से प्रत्याहार होता था उसीका भूमिष्ठा में नाभि के नीचे सो शब्द से स्पन्दन व हं शब्द से प्रत्याहार होने लगा और पिङ्गला नाड़ी में भी सो शब्द से संचार व हं शब्द से प्रत्याहार होने लगा।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

तृतीयचित्र—प्रथम दीक्षा

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल; ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत् ।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपीशिव, म, इतरलिङ्ग, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ।

(५) सरस्वती ।

(६) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, त्रिकुटी, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार ।

(७) गंगा, इडा ।

(८) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र ।

(९) सत्त्वगुणात्मक, अहङ्काररूपी विष्णु, अ, बाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ।

(१०) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य ।

(११) सत्त्व, अ, ऋक्, विष्णु, विश्व, अग्नि ।

(१२) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ।

(१३) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य ।

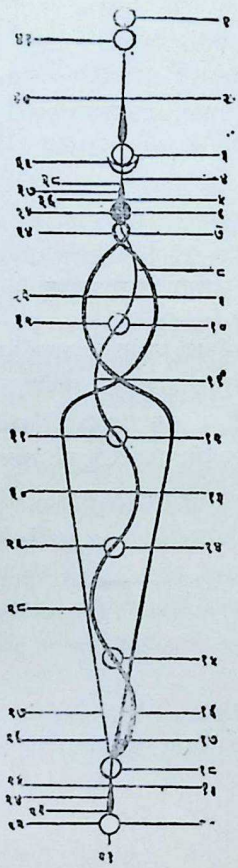
(१४) मणिपूर, मनोमयकोष, भूः, पाताल, सूर्यमण्डल, जीव, नियम्य, तामिस्र ।

(१५) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

* तृतीय चित्र *



(प्रथम दीक्षा)

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

तृतीय चित्र रहस्य

चक्षु व क्रमदीक्षा, शक्तिसंचार, समगति, भूचरीमुद्रा, पाश्वाचार, राजस, मध्यम, वैश्यत्वावस्था, जाग्रत्सुषुप्तावस्था, कर्मयोग, कर्म, विचार, कलियुग (अर्थात्) एक पाद धर्म व तीन पाद अधर्म "कलौनामैव केवलं" नाम-ओं (अर्थात्) हंसः + सोऽहं ।। धर्मचेतन शक्ति, अधर्म अचेतन शक्ति, अर्थात् ब्रह्म-शक्ति व मायाशक्ति ।।

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

(१६) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा अविद्या ।

(१७) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ।

(१८) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव ।

(१९) राजसत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ।

(२०) आधारचक्र ।

(२१) सुषुम्ना ।

(२२) शुद्धसत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(२३) सूक्ष्म ।

(२४) मात्रा, मध्यमा ।

(२५) रजः, सूर्य, सरस्वती ब्राह्मी ।

(२६) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः, सूर्य, पुरुष ।

(२७) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ।

(२८) स्थूल ।

(२९) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ।

(३०) व्यञ्जन, पश्यन्ती ।

(३१) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ।

(३२) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः त्रिपुरसुन्दरी ।

(३३) सत्त्व, अग्नि, गंगा वैष्णवी ।

(३४) यमुना, पिङ्गला ।

(३५) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ।

(३६) स्वर, परा ।

(३७) कारण ।

(३८) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(३९) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(४०) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

(४१) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ।

तृतीय चित्र की व्याख्या

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।

सुख-रहित इस अनित्य लोक को प्राप्त कर हमारा भजन करो । अर्थात् नहीं ठहरने वाला अनित्य लोक पांच तत्त्व का प्रवाह रूप जो स्थूल शरीर है इसे प्राप्त कर हमारा भजन करो । अब भगवान कौन हैं और उनका भजन क्या है ?

पुराणों में कहा है—

रजो भावस्थितो ब्रह्मा सत्त्वभावस्थितो हरिः ।
तमो भावस्थितो रुद्रस्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः ॥

इसके अनुसार भगवान् सत्त्वगुणात्मक चैतन्य हैं और वह नाभिचक्र के ऊपर हंस प्रवाह में अर्थात् अनाहत् चक्र में हैं । उन्हीं का भजन करो अर्थात् उसी हंस मन्त्र का आश्रयण करो । यह हंस मन्त्र शून्य का प्रवाह है इसके एक-एक शून्य को प्राण गति द्वारा ऊपर के शून्यों में लय करो अर्थात् जप करो जप करते-करते जीव ईश्वर को प्राप्त कर लेगा क्योंकि इसी हंस प्रवाह में जीव के उद्धार के वास्ते ऊपर से नीचे उतर कर आये हैं । वह अवतार चैतन्य कहे जाते हैं । जब हम को प्राप्त कर लिया तो "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" के अनुसार हम जीव का उद्धार कर अर्थात् उसको ऊपर खींच कर मायाचक्र के बाहर निकाल देते हैं । ईश्वर तो जीव के उद्धारार्थ बैठे हो हुए हैं । जीव तो बाहर दौड़ रहा है ।

शास्त्र कहते हैं—

शिवादि क्रिमिपर्यन्तं प्राणिनां प्राणवर्त्मनः ।
निःश्वासो छ्वास रूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये ॥

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

सः कारेण वहिर्याति हंकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेति मन्त्रं वै जीवो जपति सर्वदा॥

किन्तु जीव का यह जप अभी ठीक नहीं हो रहा है जब प्राण की गति भीतर ही हो तब इसका जप ठीक होता है अभी तो गति बाहर हो रही है तब भीतर कैसे होगी ?

भगवान् ने कहा है—

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।

अर्थात् नासाभ्यन्तरचारी प्राण और अपान को जब सम किया जाय अर्थात् दोनों की एक गति की जाय और वह सम तभी होंगे जब कि भीतर से दीक्षा दी जाय क्योंकि बिना प्राण अपान के सम किये वे दोनों पूर्ण रूप से नासाभ्यन्तर नहीं होंगे बिना नासाभ्यन्तर के शुद्ध हंस मन्त्र प्राप्त नहीं होगा। हंस मन्त्र के बिना ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता फिर उद्धार भी नहीं होगा। इसलिये भीतर ही से दीक्षा होनी चाहिये। अब माया-यन्त्र तृतीय चित्र में देखिये— दीक्षा देकर हंस सोऽहं अर्थात् प्राण अपान को जोड़ दिया, अर्थात् प्राण अपान की जो विषम गति थी उसको सम कर दिया। इसी को काशीखण्ड में योग नाम से व्यवहार किया है। 'प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि कैश्चन' इस दीक्षा का नाम चक्षु अथवा क्रम दीक्षा है। मृत्यु के समय प्राणिमात्र की यह गति की जाती है जिससे पञ्चकोष से सम्बन्ध छूट जाता है और जीव इस शरीर के बाहर निकल जाता है।

(भूमिष्ठावस्था) द्वितीय चित्र में ओंकार के प्रवाह में उ, म, म रहने के कारण शुद्ध ओंकार का उच्चारण नहीं होता था। अब दीक्षा के बाद जीव धीरे-धीरे शक्ति के साथ आधारचक्र से उठ कर मूलाधार व स्वाधिष्ठानचक्र को भेदता हुआ जब नाभिचक्र (मणिपूरचक्र) में आ जाता है तो बढ़ी हुई रजोगुण की मात्रा नष्ट हो जाती है। ओंकार के तीनों पाद उ म म बराबर हो जाते हैं किन्तु अशुद्ध ओंकार होने के कारण उच्चारण नहीं होता एक साथ सो शब्द से उसका प्रत्याहार हो जाता है और उसके साथ ही साथ जीव का भी आकर्षण हो जाता है ऐसी अवस्था में जीव की (मृत्यु) उपाधि का त्याग

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

हो जाता है। किन्तु इस जीव ने योग-साधन शक्ति से प्राण त्याग किया है अभी इसकी निर्दिष्ट आयु अवशिष्ट है इस कारण ऊपर से 'हं' शब्द से फिर ओंकार का संचार ०००००००००० होता है अर्थात् जीव दुबारा जन्म का लाभ करता है। वह पहले जन्म में शूद्र कहा क्योंकि सब के नीचे आधारचक्र में पड़ा था इसी से कहा है। 'जन्मना जायते शूद्रः।' जब इसने संस्कार द्वारा दुबारा जन्म का लाभ किया तो शूद्र से द्विज हो गया। संस्कारादद्विज उच्यते। इस ओंकार के प्रवाह में अ, उ, म, है। इसमें जीव की सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति प्रवान गति कर दी गयी अर्थात् जीव ने हंस मन्त्र में दीक्षित होकर दैवी शक्ति के साथ ओंकारोच्चारण का अधिकार प्राप्त किया ऐसे ही संस्कार प्राप्त जीव को भगवान् ने गीता में हे अर्जुन ऐसा संबोधन देकर कहा है—

"मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि भारत।"

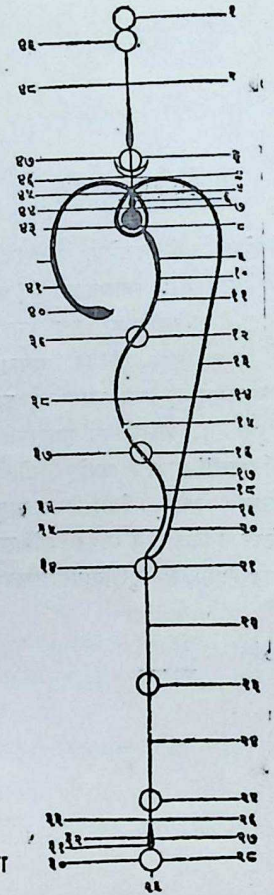
तुम्हारा सत्त्वगुणात्म चैतन्यावतार ईश्वर की शक्ति के सामने जन्म हुआ है क्योंकि तुम्हारे सामने सत्त्वगुणात्मक अकार संज्ञक ऋग्वेद है। काशीखण्ड में कहा है—'अकारं सत्त्वसम्पन्नमृक्क्षेत्रं सृष्टिपालकम्' इसका तुम उच्चारण करो अब तो मायायन्त्र के पार निकल ही जाओगे शोक मत करो। अब जीव संज्ञक अर्जुन ऋग्वेद का पाठ करने लगा इसलिये उसकी विप्र संज्ञा हो गयी। वेदपाठाद्भवेद्विप्रः। यह दूसरी मन्त्र दीक्षा कही जाती है।

———

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

* चतुर्थ चित्र *



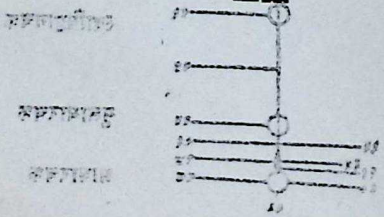
(द्वितीय दीक्षा)

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चतुर्थ चित्र रहस्य

विलोमगति, ब्रह्मग्रन्थिभेद, सूर्यमण्डलभेद, संस्कार, अभिषेक, उपनयन सावित्रीमन्त्रदीक्षा, वेदारम्भ, उपकुर्वाण (बालब्रह्मचर्य्य) प्रकाशब्रह्मचर्य, दक्षिणाचार, वीराचार, चांचरीमुद्रा, सावित्री, वा हंस मन्त्रजप, ओङ्कारोच्चारण, अकारात्मकऋग्वेदोच्चारण, शाक्त, कौल, श्रोत्रिय, अपरागति, कर्म, धारणा, जडवत् वितर्कावस्था, जाग्रत्स्वप्नावस्था, क्षत्रियत्वावस्था, द्वापरयुग, श्रीकृष्णचैतन्यावतार, आदि लीला, मुक्तवेणी, दक्षिणायन कृष्णागति, कर्मयोग, आरुरुक्षुः, प्रातःसन्ध्या, पितृतर्पण "उत्तिष्ठत" द्वापर (अर्थात्) दो पाद धर्म व दो पाद अधर्म, महारात्रि, देवासुरसंग्राम (अर्थात्) दैवीशक्ति व आसुरीशक्ति का संग्राम (अर्थात्) रजस्तमोगुणात्मिका विक्षेप व आवरणशक्तिरूपा अविद्याशक्ति तथा सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति का संग्राम, तमोगुणत्यागसालोक्यशक्ति ॥



l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

चतुर्थ चित्र—द्वितीयदीक्षा

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत् ।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका । त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा, दिव्यचक्षु ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ।

(५) अथर्वाण, अयमात्मा ब्रह्म ।

(६) सरस्वती ।

(७) निषाद ।

(८) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, पदार्थभावना, विष्णु, वा हृदयग्रन्थि, वृन्दावन । कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार, त्रिकुटी ।

(९) धैवत ।

(१०) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि ।

(११) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु, ईश्वर, नियन्तृ, अ, वाणलिङ्ग, हंसः, ओं ।

(१२) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः मर्त्य, असंसक्ति ।

(१३) पिङ्गला, यमुना ।

(१४) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य, अहं ब्रह्मास्मि ।

(१५) पञ्चम ।

(१६) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ, सत्त्वापत्ति ।

(१७) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(१८) मध्यम ।

(१९) सत्त्व, अ, ऋक् विष्णु, विश्व, अग्नि, प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म ।

(२०) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान, रजः, सूर्य, पुरुष ।

(२१) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य, तनुमानसा, तामिस्र, गोकुल ।

(२२) गान्धार ।

(२३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र, विचारणा ।

(२४) ऋषभ ।

(२५) मूलाधार, अन्नमयकोष, ब्रह्मग्रन्थि, रौरव, शुभेच्छा ।

(२६) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, जीव, उ, स्वयम्भूलिङ्ग ।

(२७) षड्ज ।

(२८) आधारचक्र ।

(२९) सुषुम्ना ।

(३०) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(३१) सूक्ष्म ।

(३२) मात्रा, मध्यमा, अनुदात्त, ह्रस्व, मुदारा ।

(३३) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(३४) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मव, रजः, काली ।

(३५) स्थूल ।

(३६) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी, विद्याशक्ति ।

(३७) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ।

(३८) व्यञ्जन, स्वरित, प्लुत, उदारा, पश्यन्ती ।

(३९) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ।

(४०) वामावर्त, इडा, पितृयान, तमः, चन्द्र, प्रकृति ।

(४१) तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा अविद्या ।

(४२) इडा, गंगा ।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

(४३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ।

(४४) स्वर, परा, उदात्त, दीर्घ, तारा ।

(४५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(४६) कारण ।

(४७) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(४८) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

(४९) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, चन्द्रमण्डल, महाकाली, ललनाचक्र, कैवल्य ।

चतुर्थ चित्र की व्याख्या

जीव यहाँ अकारोच्चारण किया । अब उच्चारण शब्द का क्या अर्थ है सुनिये; उत्पूर्वक चर गति भक्षणयोः, इस धातु से उच्चारण शब्द की सिद्धि होती है । ऊपर गति करना अर्थात् ऊपर चढ़ाना, ओंकार का उच्चारण अर्थात् ओंकार को ऊपर चढ़ाना भाव यह है कि ओंकार शब्द है और शब्द का आधार शून्य है नीचे के शून्य को ऊपर के शून्य में लय करने से ओंकार का उच्चारण होता है । अब यहाँ नीचे के शून्य को ऊपर के शून्य में लय करने से अकार उकार में संधि हो गयी तो वाम नासिका में इड़ा नाड़ी का प्रवाह है उसमें तमोगुणात्मिका आवरणशक्तिरूपा जो आसुरी शक्ति है उसका प्रत्याहार हो गया ।

——

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

पञ्चमचित्र—तमोगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत्।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि; तुर्यगा; द्वारिका, त्रिवेणी; सुदर्शनचक्र, भ्रामरीगुहा; दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव; म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत्।

(५) अयर्वण, अयमात्मा ब्रह्म।

(६) सरस्वती।

(७) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, वृन्दावन, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार, त्रिकुटी।

(८) पिङ्गला, यमुना।

(९) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि।

(१०) सत्त्वगुणात्मक अहङ्काररूपी विष्णु: अ, वाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं।

(११) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य,।

(१२) रजः, उ, यजुः, ब्रह्मा, तैजस, सूर्य, अहं ब्रह्मास्मि।

(१३) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ।

(१४) रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा अविद्या।

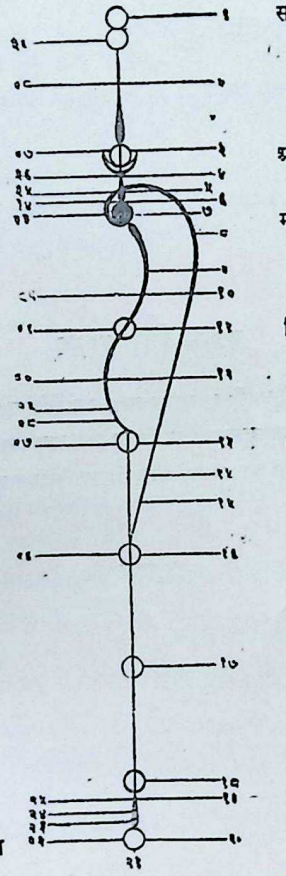
(१५) दक्षिणावर्त, पिङ्गला, देवयान; रजः, सूर्य, पुरुष।

(१६) मणिपूर, मनोमयकोष; सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव; नियम्य, तामिस्र, गोकुल।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

* पञ्चम चित्र *



al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

पञ्चम चित्र रहस्य

अकारात्मक ऋग्वेदोच्चारित, उदारात्मक यजुर्वेदोच्चारण, प्रातःसन्ध्या तथा ब्रह्मोपासना समाप्त, मध्याह्नसन्ध्या व विष्णु उपासना प्रारम्भ, प्रथमदण्डत्याग, द्वितीयदण्डग्रहण, तमोगुण का त्याग, चांचरीमुद्रा, आनन्दब्रह्मचर्य्य ।।

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(१७) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ।

(१८) मूलाधार, अन्नमयकोष, रौरव ।

(१९) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयंभूलिङ्ग, जीव ।

(२०) आधारचक्र ।

(२१) सुषुम्ना ।

(२२) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(२३) सूक्ष्म ।

(२४) मात्रा, मध्यमा ।

(२५) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(२६) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ।

(२७) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि, सत्त्व, तारा ।

(२८) स्थूल ।

(२९) सत्त्वगुणात्मिका विद्या ।

(३०) व्यञ्जन, पश्यन्ती ।

(३१) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार, तमः, त्रिपुरसुन्दरी ।

(३२) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी ।

(३३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ।

(३४) स्वर, परा ।

(३५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(३६) कारण ।

(३७) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(३८) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

(३९) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

पंचम चित्र की व्याख्या

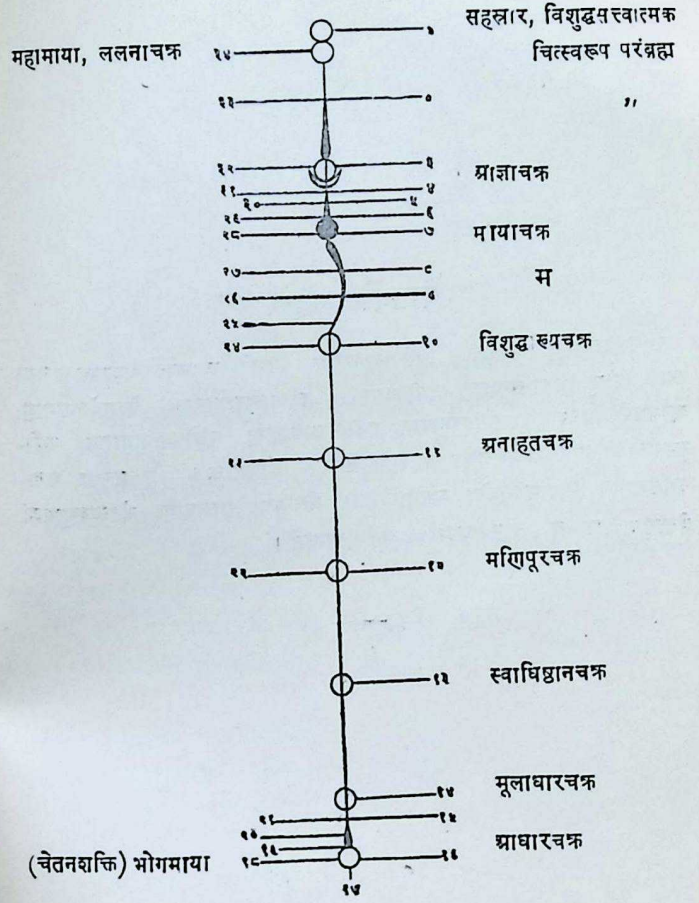
अब जीव (नामधारी अर्जुन) उकार संज्ञक यजुर्वेद का उच्चारण करने लगा । उकारमयतस्याग्रे रजोरूपं—यजुर्जनिम्। जब उकार की मकार से सन्धि हो गयी तब दक्षिण नासिका का भी श्वासा गिरना बन्द हो गया अर्थात् दक्षिण नासिका में पिङ्गला नाड़ी का प्रवाह है उसमें रजोगुणात्मिका विक्षेपशक्तिरूपा जो आसुरीशक्ति है उसका भी प्रत्याहार हो गया ।

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

* षट चित्र *



al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

षष्ठ चित्र रहस्य

उकारात्मक यजुर्वेदोच्चारित, मकारात्मक सामवेदोच्चारण, मध्याह्न सन्ध्या तथा विष्णूपासना-समाप्त, सायंसन्ध्या व रुद्रोपासनाप्रारम्भ, देवतर्पणसमाप्त, ऋषितर्पणप्रारम्भ, द्वितीयदण्डत्याग, तृतीय दण्डग्रहण, रजोगुणप्रत्याहृत, रजोगुणात्मिका अविद्याशक्ति तथा सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति की एकात्मता, चन्द्र-सूर्यसमागम, विषामृतसंयोग, अगोचरीमुद्रा, त्रेतायुग, कालरात्रि चैतन्यब्रह्मचर्य्य त्रेतायुग (अर्थात्) तीनपादधर्म व एकपादधर्म ।।

---

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

चित्र-परिचय

षष्ठ चित्र—रजोगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, वैकुण्ठ, ब्रह्मरन्ध्र, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत् ।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यगा, द्वारिका, दिव्यचक्षु, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्दब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ।

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ।

(६) सरस्वती ।

(७) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, विष्णुग्रन्थि, बृन्दावन, त्रिकुटी, दशमद्वार, कालचक्र, द्यावाभूमि ।

(८) तमः, म, साम, शिव, प्राज्ञ, चन्द्र, तत्त्वमसि ।

(९) सत्त्वगुणात्मक अहङ्कारूपी विष्णु, अ, वाणलिङ्ग, ईश्वर, नियन्तृ, हंसः, ओं ।

(१०) विशुद्धाख्य, आनन्दमयकोष, भुवः, मर्त्य ।

(११) अनाहत, विज्ञानमयकोष, ईश्वर, नियन्तृ ।

(१२) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, जीव, नियम्य, तामिस्र, गोकुल ।

(१३) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष, अन्धतामिस्र ।

(१४) मूलाधार, अन्नमयकोष, रौरव ।

(१५) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(१६) आधारचक्र ।

(१७) सुषुम्ना ।

(१८) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

(१९) सूक्ष्म ।

(२०) मात्रा, मध्यमा ।

(२१) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(२२) ब्राह्मी, इच्छाशक्ति, मन, रजः, काली ।

(२३) वैष्णवी, ज्ञानशक्ति, बुद्धि; सत्त्व, तारा ।

(२४) गौरी, क्रियाशक्ति, अहङ्कार; तमः, त्रिपुरसुन्दरी ।

(२५) व्यञ्जन, पश्यन्ती ।

(२६) सत्त्व, अग्नि, गंगा, वैष्णवी ।

(२७) स्थूल ।

(२८) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ।

(२९) स्वर, परा ।

(३०) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(३१) कारण ।

(३२) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(३३) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

(३४) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली; ललनाचक्र, कैवल्य ।

षष्ठ चित्र की व्याख्या

अब जीव का कण्ठगत् प्राण हो गया तो भी वह हंसो; हंसो इस प्रकार मकारात्मक सामवेद का उच्चारण करता हुआ एक-एक नीचे के शून्य को ऊपर के

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

शून्य में लय करके आगे बढ़ने लगा जब सत्त्वगुण के प्रवाह के सब शून्य लय हो गये केवल एक शून्य अवशिष्ट रह गया तो वह मायाचक्र को भेदकर जिस समय बाहर निकला उसी समय जीव की स्थूलोपाधि अर्थात् योगमाया के सत्त्वगुण का भी प्रत्याहार हो गया।

टिप्पणी—

पहले कह चुके हैं कि मायाचक्र से नाभिचक्र तक जो प्रवाह है वह स्वतन्त्र रूप से योगमाया का है इसी में तीन गुण का संकल्प किया था उन तीनों का प्रत्याहार हो गया। वस्तुतः महामाया का तो यह रजोगुण ही है क्योंकि महामाया का गुण-विभाग इस प्रकार है। आज्ञाचक्र से मायाचक्र तक सत्त्वगुण, मायाचक्र से नाभिचक्र तक रजोगुण, नाभिचक्र से मूलाधारचक्र तक तमोगुण इस महामाया के एक पाद में अर्थात् रजोगुण में तीन गुण का संकल्प कर योग-माया ने यह खेल किया था वह समाप्त हो गया।

———

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

सप्तमचित्र—सत्त्वगुण प्रत्याहृत

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, वैकुण्ठ, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्यातीत, सत् ।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, रुद्रग्रन्थि, तुर्यंगा, द्वारिका, त्रिवेणी, सुदर्शनचक्र, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा ।

(४) तामससत्त्वात्मक चित्तरूपी शिव, म, इतरलिङ्ग, शब्द ब्रह्म, काल, साक्षी, प्रणव, सोऽहं, तत् ।

(५) अथर्वण, अयमात्मा ब्रह्म ।

(६) इडा, असी ।

(७) सुषुम्ना, गंगा, अविमुक्तवाराणसी ।

(८) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, वृन्दावन, त्रिकुटी, कालचक्र, द्यावाभूमि, दशमद्वार ।

(९) विशुद्धाख्य आनन्दमयकोष, भुवः मर्त्य ।

(१०) अनाहत, विज्ञानमयकोष ।

(११) मणिपूर, मनोमयकोष, सूर्यमण्डल, भूः, पाताल, गोकुल ।

(१२) स्वाधिष्ठान, प्राणमयकोष ।

(१३) मूलाधार, अन्नमयकोष ।

(१४) राजससत्त्वात्मक मनोरूपी ब्रह्मा, उ, स्वयम्भूलिङ्ग, जीव ।

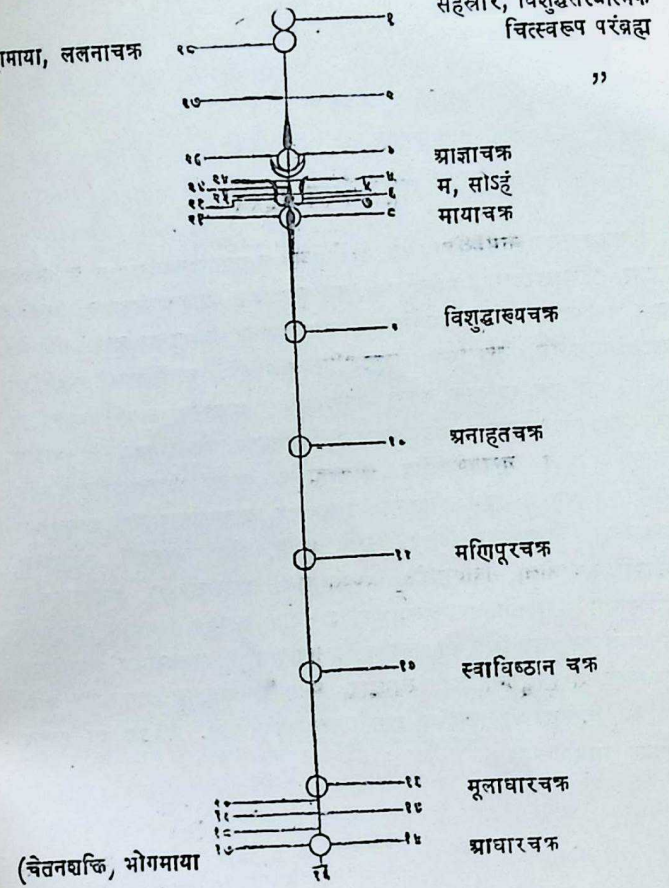
(१५) आधारचक्र ।

(१६) सुषुम्ना ।

(१७) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा ।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi



al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

सप्तम चित्र रहस्य

मकारात्मक सामवेदोच्चारित, सायंसन्ध्या व रुद्रउपासना समाप्त, ऋषितर्पण-समाप्त, तृतीयदण्डत्याग, प्राणत्याग, रजोगुणत्याग, अविद्यासंगत्याग, स्थूलदेह-त्याग, कर्मकाण्ड व प्रवृत्तिमार्गत्याग, संसारत्याग, विष्णु वा हृदय ग्रन्थिभेद, शिवशक्तिसमागम, उत्तरायण, शुक्लागति, युक्तवेणी, पूर्णाभिषेक, स्पर्शदीक्षा, कुलीन, नवजीवन, सात्त्विक, उत्तम, सायुज्यमुक्ति, वानप्रस्थ, गायत्री मन्त्रदीक्षा, अजपाजप, सोऽहं-मन्त्रजप, प्रणवोच्चारण, दिव्याचार, खेचरीमुद्रा, विरजाहोम, सत्त्वगुणप्रत्याहृत, चन्द्रमण्डलभेद, जीवब्रह्म की एकता, कारणशरीर में गति, परागति, तत्त्वगति, अकर्म, योगारूढ, युक्तावस्था, ब्राह्मणत्वावस्था, ज्ञानावस्था, ध्यानावस्था, सिद्धावस्था, प्रलय, काशी प्राप्ति, शैव "जाग्रत", उन्मत्तवत्, तपश्चर्य्या, मध्यलीला, विशिष्टाद्वैत, प्रध्वंसाभाव, ब्रह्मदण्डग्रहण, अथवा गुरु के आदेशानुसार समावर्तनान्तरगार्हस्थ्याश्रम, ज्ञानयोग, सत्ययुग (अर्थात्) चतुष्पाद धर्म, वामाचार, मायानिद्रा का अवसान, प्रातरुत्थान, संसारस्वप्नभंग, अरुणोदय, लोहितवर्ण, ज्ञानचक्षुउन्मीलित, स्वर्गद्वार, अपावृत, ब्राह्ममुहूर्त उषायात्रा, जड-बोधाभाव, चित्सत्ता की उपलब्धि, ज्ञान, सत्त्वगुण में गति, नैष्ठिक वा स्वरूप ब्रह्मचर्य्य, जाग्रतावस्था ।।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(१८) माया, मध्यमा ।

(१९) रजः, सूर्य, सरस्वती, ब्राह्मी ।

(२०) सूक्ष्म ।

(२१) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया + इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्ति, त्रिपुरसुन्दरी ।

(२२) वरुणा, पिङ्गला ।

(२३) स्वर, परा ।

(२४) कारण ।

(२५) तमः, चन्द्र, यमुना, गौरी ।

(२६) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्तिप्रधाना चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, काली ।

(२७) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम् ।

(२८) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, कैवल्य ।

सप्तम चित्र की व्याख्या

अब जीव मायाचक्र के बाहर निकला तो उसकी मृत्यु हो गयी अर्थात् स्थूल शरीर का त्याग हो गया किन्तु साथ ही साथ नीचे के एक शून्य ने जहाँ नाद प्रवाह पतित शून्य में अर्थात् ब्रह्मसूत्र में प्रवेश किया तो जीव ने पुनः नव जीवन का लाभ किया । अर्थात् सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति का लाभ किया । इसी को स्पर्श दीक्षा कहते हैं । भगवान ने भी इसी दीक्षा को गीता ६ । २८ के श्लोक में कहा है—

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

अस्तु ! यहाँ सोहं प्रवाह की जो हं शब्द से नीचे कृष्ण गति हो रही थी वह सो शब्द से पलट कर ऊर्ध्व गति अर्थात् शुक्ल गति हो गयी या सोहं प्रवाह को ऊर्ध्व गति होने से जीव ब्रह्म हो जाता है और वह संसार में नहीं आता।

भगवान् ने गीता में कहा है—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥

टिप्पणी—

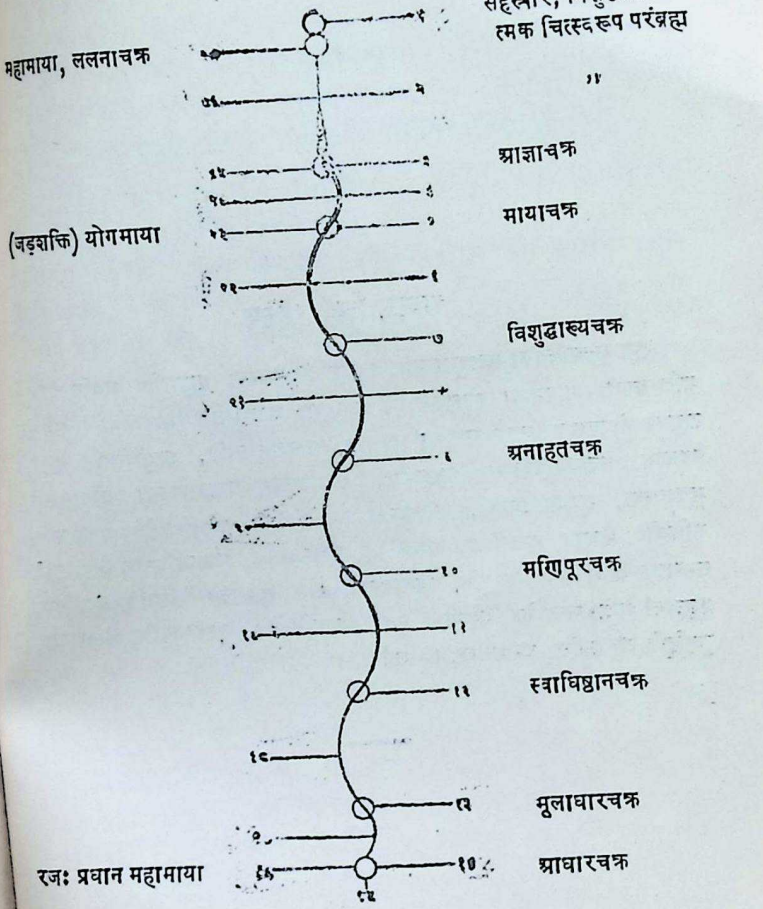
सहस्रार से आज्ञाचक्र तक निर्गुण, मायाचक्र से मणिपूरचक्र तक सगुण है। आज्ञाचक्र तथा मायाचक्र के बीच में नाद बिन्दु स्वरूप प्रणव है यही सोहं की गति है। इसी को नाम भी कहते हैं। इसमें दो शब्द हैं हंसः सोहं। यहाँ हं शब्द से नीचे गति होने से जड़ और सो शब्द से ऊर्ध्व गति होने से चैतन्य बोध होता है।

———

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fund

* अष्टम चित्र *



संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधि

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

अष्टम चित्र रहस्य

शुद्ध सत्त्वात्मिका पराबुद्धिरूपा ज्ञानशक्ति प्रधाना ब्रह्मशक्ति अर्थात् चेतन-शक्तिस्वरूपा भोगमाया स्वस्थान में प्रत्याहृत तथा उस भोगमाया के संग से ब्रह्मका जीवत्व व संसार भ्रम का अवसान, स्वरूपावस्थिति, ब्राह्मीस्थिति, परम-पदलाभ, सत्त्व गुणत्याग, गुणातीत, तुर्य्यावस्था, ब्रह्मत्वावस्था, योगावस्था, मुक्तावस्था, शुद्धज्ञानावस्था, अनवच्छिन्न ओंकार की गति, अद्वैतबोध संन्यास, भक्तियोग, वैष्णव, अन्तर्लीला, पिशाचवत्, प्रध्वंसाभाव, "प्राप्य वरान् निबोधत" सम्प्रज्ञात वा सविकल्प समाधि, सहजावस्था, बौद्ध, शुद्धसत्त्व में स्थिति, सूर्य्योदय, शुक्लवर्ण अग्निमण्डल भेद, शाम्भवी मुद्रा, रुद्रग्रन्थिभेद, सारूप्ययुक्ति, प्रभासयज्ञ, पूर्णाहुति ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॥

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

चित्र-परिचय

अष्टमचित्र—सम्प्रज्ञात वा सविकल्पसमाधि

(१) सहस्रार, सूर्यमण्डल, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, ब्रह्मरन्ध्र, बैकुण्ठ, महाकाल, सत्, चित् आनन्द।

(२) विशुद्धत्त्वात्मक चित्सस्वरूप परब्रह्म, महाकाल, परमात्मा, तुर्यातीत, सत्।

(३) आज्ञाचक्र, हिरण्मयकोष, अग्निमण्डल, ब्रह्मद्वार, परंपद, विन्दु, तुर्य्यंगा, गंगोत्री, द्वारिका, सुदर्शनचक्र, त्रिवेणी, दिव्यचक्षु, गवाक्षमण्डल, भ्रामरीगुहा, शुद्धसत्त्वात्मकचित्तरूपी ब्रह्म, तपः।

(४) नाद।

(५) मायाचक्र, चन्द्रमण्डल, स्वः, स्वर्ग, स्वर्गद्वार, हरिद्वार, बृन्दावन, मन्दाकिनी, पदार्थभावना, कालचक्र, त्रिकुटी, दशमद्वार, द्यावाभूमि।

(६) सत्त्व, (परासत्त्व) विश्व, अ, ऋक्।

(७) विशुद्धाख्य, भुवः, मर्त्य, अलकनन्दा, असंसक्ति, जनः।

(८) राजससत्त्व, (अतिसत्त्व) तैजस, उ, यजुः।

(९) अनाहत, सत्त्वापत्ति, महः।

(१०) मणिपूर, भूः, पाताल, भोगवती, गोकुल, तनुमानसा, स्वः।

(११) तामससत्त्व, (सत्त्व) प्राज्ञ, म साम।

(१२) स्वाधिष्ठान, विचारणा, भुवः।

(१३ मूलाधार, शुभेच्छा, भूः।

(१४) आधारचक्र।

(१५) सुषुम्ना।

(१६) रजोगुणात्मिका मनोरूपा इच्छाशक्ति-प्रधाना चित्शक्तिस्वरूपा महामाया, काली, जीवात्मा, ओं, सोहं।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

(१७) षड्ज।

(१८) ऋषभ।

(१९) गान्धार।

(२०) मध्यम।

(२१) पञ्चम।

(२२) धैवत।

(२३) तमोगुणात्मिका अहङ्काररूपा क्रियाशक्तिप्रधाना मायाशक्ति (अर्थात्) जडशक्तिस्वरूपा योगमाया, त्रिपुरसुन्दरी।

(२४) निषाद।

(२५) शुद्धसत्त्वात्मिका परावुद्धिरूपा ज्ञानशक्तिप्रधाना ब्रह्मशक्ति (अर्थात्) चेतनशक्तिस्वरूपा भोगमाया, तारा।

(२६) महाकारण, एकमेवाऽद्वितीयम्।

(२७) विशुद्धसत्त्वात्मिका व त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया, महाकाली, चन्द्रमण्डल, ललनाचक्र, गोमुखी, कैवल्य।

अष्टम चित्र—सविकल्प (संप्रज्ञात) समाधि की व्याख्या

अब प्रकृति में जीव नाद को विन्दु में लय करते-करते आगे वढ़ने लगा जब नाद भी विन्दु में लय हो गया तब सत्त्वगुण का त्याग होने के कारण जीव शुद्ध सत्त्व में स्थित हुआ अर्थात् विन्दु रूप आज्ञाचक्र में ब्रह्मरूप से जीव की स्थिति हुई। यही सारूप्य मुक्ति है और इसी को सविकल्प संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

भगवान ने कहा है—

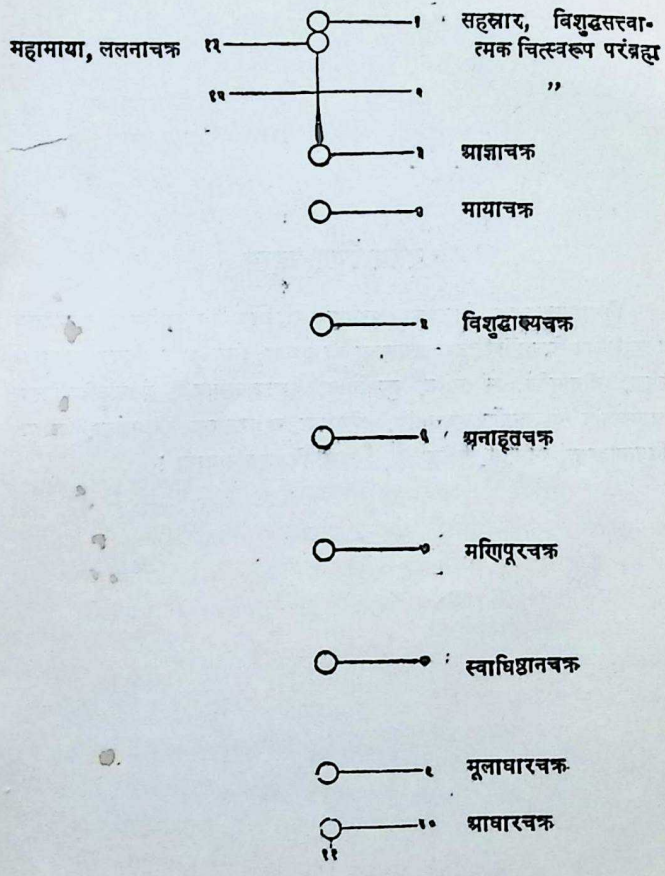
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

——

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

* नवम चित्र *



al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathr

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

नवम चित्र रहस्य

विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म के साथ त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञान-क्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया की एकता, चित् और चिदाभास एकात्मक, जीवन्मुक्ति, मोक्षयोग, तुर्य्यातीत, अत्यन्ताभाव, द्वैताद्वैतविवर्जितम्, असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्पसमाधि, जीवात्मा व परमात्मा की एकता, अवधूत, विज्ञानावस्था, परमहंस, परिव्राजक, विकर्म, विशुद्धज्ञानावस्था ॥

L Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

चित्र-परिचय

नवम चित्र—असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्प समाधि

(१) सहस्रार, सूर्य्यमण्डल, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, ब्रह्मरन्ध्र, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द, वैकुण्ठ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्य्यातीत, सत्।

(३) आज्ञाचक्र।

(४) मायाचक्र।

(५) विशुद्धाख्य।

(६) अनाहत।

(७) मणिपूर।

(८) स्वाधिष्ठान।

(९) मूलाधार।

(१०) आधारचक्र।

(११) सुषुम्ना।

(१२) एकमेवाऽद्वितीयम्, महाकारण।

(१३) विशुद्धसत्त्वात्मिका व इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा

Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

नवम चित्र रहस्य

विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म के साथ त्रिगुणात्मिका इच्छाज्ञान-क्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महामाया की एकता, चित् और चिदाभास एकात्मक, जीवन्मुक्ति, मोक्षयोग, तुर्य्यातीत, अत्यन्ताभाव, द्वैताद्वैतविवर्जितम्, असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्पसमाधि, जीवात्मा व परमात्मा की एकता, अवधूत, विज्ञानावस्था, परमहंस, परिव्राजक, विकर्म, विशुद्धज्ञानावस्था !।

L Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

चित्र-परिचय

नवम चित्र—असम्प्रज्ञात वा निर्विकल्प समाधि

(१) सहस्रार, सूर्य्यमण्डल, विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, ब्रह्मरन्ध्र, महाकाल, सत्, चित्, आनन्द, वैकुण्ठ।

(२) विशुद्धसत्त्वात्मक चित्स्वरूप परब्रह्म, महाकाल, तुर्य्यातीत, सत्।

(३) आज्ञाचक्र।

(४) मायाचक्र।

(५) विशुद्धाख्य।

(६) अनाहत।

(७) मणिपूर।

(८) स्वाधिष्ठान।

(९) मूलाधार।

(१०) आधारचक्र।

(११) सुषुम्ना।

(१२) एकमेवाऽद्वितीयम्, महाकारण।

(१३) विशुद्धसत्त्वात्मिका व इच्छाज्ञानक्रियात्मिका चिच्छक्तिस्वरूपा महा-

Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

अब यहाँ पर विचारणीय यह है कि आज्ञाचक्र से सहस्रारचक्र तक जो एक शून्य का प्रवाह है उसका सञ्चार तथा स्पन्दन न होने के कारण भगवान् ने उसको विकर्म कहा है।

कर्मणो ह्यपि बौद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

कर्म अकर्म तथा विकर्म तीनों का रहस्य जानना चाहिये। मणिपूर से माया-चक्र तक हंस का प्रवाह कर्म अर्थात् कर्मकाण्ड है। मायाचक्र से आज्ञाचक्र तक सोऽहं का प्रवाह अकर्म अर्थात् ज्ञानकाण्ड है। आज्ञाचक्र से सहस्रारचक्र तक जो प्रवाह है वह विकर्म है इस प्रवाह में स्थित योगी सहस्रार चक्रस्थ ब्रह्मरन्ध्र को भेद कर बाहर निकल जाता है और निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

प्रथमदीक्षा अर्थात् चक्षुदीक्षा वा शक्तिसंचार का परिणाम

मूलाधार चक्र से मणिपूरचक्र तक गति समाप्त

सूर्यमण्डलभेद, ब्रह्मग्रन्थिभेद, जाग्रत्स्वप्नावस्था, क्षत्रियत्वावस्था, कर्मयोग, हंसमन्त्रजप, सावित्रीमन्त्रोच्चारण, ब्रह्मचर्य्याश्रम, तमोगुणत्याग, सालोक्यमुक्ति, अशुद्धसत्त्वात्मिका विद्याशक्ति का सङ्ग ग्रहण, शाक्त, श्रोत्रिय, धारणावस्था, आरुरुक्षः "उत्तिष्ठत"।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

तृतीयदीक्षा अर्थात् स्पर्शदीक्षा वा शिवशक्ति-समागम का परिणाम

मायाचक्र से आज्ञाचक्र तक गति समाप्त

अग्निमण्डलभेद, रुद्रग्रन्थिभेद, तुर्य्यावस्था, ब्रह्मत्वावस्था, भक्तियोग, ब्राह्मी-स्थिति, विश्राम, संन्यासाश्रम, सत्त्वगुणत्याग, सारूप्यमुक्ति; शुद्धसत्त्वात्मिका पराविद्या के संग में स्थिति, वैष्णव, कुलीन, सम्प्रज्ञातसमाधि, योगी, "प्राप्य वरान्निबोधत"।

Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

आरुरुक्षः "उत्तिष्ठत"।

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm